श्री यशोविजयजी जैन ग्रंथमाला
दादासाहेब, भावनगर.
फोन : ०२७८-२४२५३२२
3008285
180

दीक्षा विवेचन

...के शंकराचार्य जेवा ज्ञानी दीक्षा ले ए शोभी शके छे, पण हरेक जुवानीया एवा महान पुरुषों नुं अनुकरण करवा बेसे तो ए धर्मने अने पोताने शोभाववाने बदले लजवे।

—महात्मा गांधी

(ता० २८ अगस्त १९२७ नवजीवन)

लेखक—

पं० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम०ए०,

शास्त्राचार्य, वेदान्त वारिधि, न्यायतीर्थ।

प्रकाशक—

चम्पालाल बाँठिया, भीनासर (बीकानेर)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रथम मुद्रण १००० प्रति
मार्च सन् १९४४ ई०

मूल्य ।।)

मुद्रक—
उमादत्त शर्मा
रत्नाकर प्रेस,
११।ए, सैयद सालो लेन,
कलकत्ता ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्राथमिक निवेदन

जो व्यक्ति दुनियादारीके सब धन्धोंको छोड़ कर सारा जीवन मोक्ष मार्ग की आराधनामें लगा देता है, उसे साधु कहते हैं। किसी भी समाज या देशके लिये सच्चे साधुओंका होना गौरवकी बात है। जिस समय मानव-समाज सांसारिक वासनाओंसे अन्धा होकर विनाशके मार्गपर चलने लगता है उस समय साधु ही अपने जीवन तथा उपदेशों द्वारा उसे रोकता है और फिर उन्नति पथ पर स्थिर करता है। भौतिकताके इस युगमें तो सच्चे साधुओंकी नितान्त आवश्यकता है। महावीर, बुद्ध, मुहम्मद, क्राइस्ट, नानक शंकर या दयानन्द सरीखा एक भी साधु युगके प्रवाहको बदल सकता है।

जहाँ सच्चे साधुओंका होना राष्ट्रके लिए वरदान है वहाँ ढोंगी साधुओं का होना अभिशाप है। आज भारतवर्षमें साधु वेषधारियोंकी संख्या लग-भग सत्तर लाख है। उनमेंसे इने गिने महात्माओंको छोड़कर सबके सब रोगके कीटाणुओंकी तरह देश और जातिका अभिशाप बने हुए हैं। हिन्दू-समाजकी अन्ध श्रद्धासे अनुचित लाभ उठाकर वे अपने स्वार्थोंकी पूर्ति करते हैं। कपड़ोंके सिवाय उनमें साधुत्वका कोई लक्षण नहीं होता। अकर्मण्यता और दुराचार उनकी देन हैं।

ऐसे ढोंगियोंकी संख्या जितनी कम हो उतना ही अच्छा है। भारतवर्षकी धार्मिक मनोवृत्ति तथा उदाहरण स्वरूप कुछ अच्छे साधुओंका अस्तित्व होनेके

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कारण एकदम ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता कि कोई भी दीक्षा न ले। फिर भी अयोग्य व्यक्तियोंको साधु बननेसे रोकना हमारा कर्तव्य है।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि अयोग्य किसे कहा जाय? इसके लिए धर्मशास्त्रोंमें सब तरहका स्पष्टीकरण होने पर भी इसका निर्णय केवल दीक्षा देने वालों पर ही नहीं छोड़ा जा सकता। वे तो चेले और चेलियोंकी वृद्धि के लिये प्रत्येक व्यक्तिको मूण्डनेके लिए तैयार हो जाते हैं। संघ या और किसी धार्मिक संगठनमें इतनी शक्ति नहीं है कि अयोग्य व्यक्तियोंको दीक्षित होनेसे रोक सके। ऐसी दशामें एक ही उपाय है कि इस प्रथाको कानून द्वारा रोकनेके लिए सरकारसे प्रार्थना की जाय।

बालक शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक किसी भी दृष्टिसे सच्चे साधुके कठोर व्रतोंका पालन नहीं कर सकता। वह प्रत्येक दृष्टिसे साधु बननेके अयोग्य होता है। अयोग्य व्यक्तियोंकी दीक्षा रोकनेका पहला पाया यह है कि बालकों को साधु बननेसे रोक दिया जाय।

एकवार साधु बनने पर बालक संपत्ति रखना, विवाह करना, आदि सामाजिक अधिकारोंसे वंचित हो जाता है। उसके अधिकारोंकी रक्षाके लिए भी यह आवश्यक है कि जब तक वह समझदार तथा परिपक्व बुद्धि वाला नहीं हुआ है, उसे साधु न बनने दिया जाय।

बीकानेर राज्यमें ऐसे धार्मिक संप्रदाय विद्यमान हैं जिनमें नौ दस वर्षके बालक तथा बालिकाओंको साधु बना लिया जाता है। इसमहा हानिकारक रिवाजको रोकनेके लिए मैंने 'बीकानेर लेजिस्लेटिव असेम्बली' में 'बाल दीक्षा प्रतिबन्धक बिल रखनेका निश्चय किया है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस प्रस्तावको रखते समय मेरे हृदयमें किसी प्रकारका साम्प्रदायिक या वैयक्तिक द्वेष नहीं है। जिस सम्प्रदायका मैं स्वयं अनुयायी हूँ, उसमें भी बहुत साधु छोटे-छोटे बालकोंको मूंड लेते हैं। इतर सम्प्रदायोंके साथ-साथ मुझे अपनी सम्प्रदायका भी कोप-भाजन बनना पड़ेगा, इसका मुझे पूरा खयाल है।

साधुसंस्थाको बदनाम करना या साधुओंकी संख्या कम करना भी इसका लक्ष्य नहीं है। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि हमारे साधु सच्चे साधु बनें। योग्य और अयोग्य सभी तरहके व्यक्तियोंको साधु बना लेनेसे साधु-संस्थाका सम्मान घटता है। यदि साधुसंस्थाकी पवित्रताके लिए संख्या कुछ घट भी जाय तो इसकी चिन्ता न करनी चाहिए।

इस प्रस्तावके रखनेमें मेरे तीन उद्देश्य हैं—

१—बालक और बालिकाओंका जीवन बरबाद होनेसे बचाना।

२—साधुसंस्थामें बढ़ते हुए कालुष्यको जहाँतक हो सके कम करना।

३—सामाजिक जीवनकी पवित्रताकी रक्षा करना।

मेरे एतद्विषयक सभी प्रयत्नोंका लक्ष्य ऊपर कही गई तीन बातें हैं।

सुधारके लिये जब कोई व्यक्ति खड़ा होता है तो साम्प्रदायिक द्वेषका दोष मढ़कर उसे बदनाम करने तथा कार्यमें बाधा डालनेका प्रयत्न किया जाता है। समझदार पाठकोंसे मेरा निवेदन है कि वे विरोधियोंकी ऐसी बातोंपर ध्यान न देकर केवल सुधारकी दृष्टिसे निष्पक्ष विचार करें। वैयक्तिक आक्षेपोंको सुधारके मामलेमें महत्व न देना चाहिए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संन्यास धर्म तथा बाल दीक्षा विषयक साधारण ववेचन शास्त्रीय प्रमाणों के साथ इस पुस्तिकामें दिया गया है। विद्वान पाठकोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इसे अच्छी तरह पढ़े और बाल दीक्षा विषयक अपनी राय मेरे पास लिख भेजें।

आशा है, सुधार प्रिय सज्जन इस कुप्रथाको रोकनेमें पूरा सहयोग देंगे।

निवेदक

चम्पालाल बाँठिया M. L. A. (BIKANER)

भीनासर (बीकानेर)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बाल दीक्षा विवेचन

मुक्तिका मार्ग और संन्यास

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस करावुभौ ॥ गीता अ० ५ श्लो० २ ॥

संसारमें कल्याणके दो मार्ग हैं—संन्यास और कर्मयोग। इन्हीं दो मार्गों को सांख्य और योग अथवा ज्ञानमार्ग और कर्म-मार्ग भी कहा जाता है। संन्यासका अर्थ है कर्मसंन्यास। जो लोग संसारके समस्त व्यवहारोंको निःसार समझ कर उनका त्याग कर देते हैं, वे संन्यासी कहे जाते हैं। कर्मयोगका अर्थ है अनाशक्तियोग। सांसारिक विषयोंमें अनाशक्त रहते हुए लौकिक कार्य करते रहना अनाशक्ति योग है। सांसारिक व्यवहारोंको कर्तव्य-बुद्धिसे करते हुए जो व्यक्ति अपने जीवनको देश, जाति, लोक अथवा धर्मकी सेवामें लगा देते हैं, वे इसी कोटिमें गिने जाते हैं। इन्हींको लक्ष्य करके कविवर मैथिलीशरण गुप्तने कहा है—

बास उसी में है विभुवर का है बस सच्चा साधु वही,
जिसने दुखियोंको अपनाया, बढ़कर उनकी बाँह गही।
आत्मस्थिति जानी उसने हो परहित जिसने व्यथा सही,
परहितार्थ जिनका वैभव है, है उनसे ही धन्य मही ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रायः सभी धर्मोंने इन मार्गोंको अपनाया है। किसीने संन्यास को प्रधानता दी है और किसीने कर्मयोग को। अब हम संसारके मुख्य धर्मोंमें प्रचलित संन्यास प्रथाका संक्षेपसे दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

इस्लाम धर्म

इस्लामके सिद्धान्तानुसार संन्यासका कोई महत्व नहीं है। इस धर्मके फरमानके अनुसार संन्यास न लेना चाहिये। पैगम्बर साहेबने स्वयं फरमान किया है कि खुदाने मनुष्यके लिए जो जो उपयोगी वस्तुएँ बनाई हैं, उन्हें भोगनेका निषेध न करना चाहिए। रमजानके दिनोंमें उपवास करना, शराब नहीं पीना, पाँच वार नमाज पढ़ना, मक्केकी यात्रा करना आदि जो फरमान पैगम्बर साहेबने किये हैं, वे संसारमें रहकर धार्मिक जीवन बितानेके लिए हैं। संसारका त्याग करके संन्यासी बन जानेका फरमान कहीं नहीं है। इस्लाम धर्ममें मुल्ला, मौलवी, मौलाना, पीर वगैरह नाम वाले विद्वान् धर्मगुरु होते हैं, लेकिन वे विवाह करके गृहस्थके रूपमें रह सकते हैं। उनके लिए घरबार छोड़नेका विधान नहीं है। धार्मिक क्षेत्रमें इन्हीं का सर्वोच्च स्थान है। इनके सिवाय दरवेश, फकीर वगैरह नामसे अर्धनग्न अवस्था विचित्र वेश पहने हुए जो व्यक्ति इधर उधर फिरते दिखाई देते हैं, वे भी घरबारीके रूपमें रह सकते हैं। उनमेंसे कुछ फक्कड़ (कुंवारा) भी रहते हैं, किन्तु इस प्रकार रहना इस्लाम धर्मसे अनुमत नहीं है। फकीरोंमें दो विभाग होते हैं—बेशरा अर्थात् शरा (धर्मनियम) के विरुद्ध चलने वाले और बासरा अर्थात् शराके अनु-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सार चलने वाले। इनमेंसे बेशरा विवाह नहीं करते किन्तु बाशरा विवाह करके घरबारीके रूपमें रहते हैं।

ईसाई धर्म

इस्लाम धर्मकी तरह ईसाई धर्ममें भी संन्यासका कोई स्थान नहीं है। यदि किसीको गृहस्थ जीवनसे वैराग्य हो जाय, तो वह एकान्त जीवन बिता सकता है, किन्तु संन्यासीके समान किसी अलग श्रेणीमें नहीं गिना जाता और न विशेष प्रकारके कपड़े ही पहिनता है। उनके धर्मगुरु भी गृहस्थ ही होते हैं। सन् १६०० के लगभग ईसाई धर्ममें जो सुधार हुआ, उससे पहले इस धर्ममें भी मठ तथा साधु-साध्वियोंका जोर था। किन्तु प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायमें उनका अस्तित्व बिल्कुल नहीं है, हाँ, पुरानी परम्परापर चलनेवाले रोमन कैथोलिक सम्प्रदायमें अब भी साधु साध्वी होते हैं। किन्तु साधु साध्वी वही बन सकता है, जो योग्य उमरका हो और स्वेच्छा पूर्वक दुनियाकी उपाधियोंसे दूर रहना चाहता हो। दीक्षार्थीके लिये यह नियम है कि उसे २५ वर्षसे पहले साधुओंके लिये चलनेवाले कालेजमें कमसे कम सात आठ वर्ष अभ्यास करके परीक्षा पास करनी चाहिये। परीक्षा पास करने पर भी प्रत्येक व्यक्तिको धर्मगुरु नहीं बनाया जाता। विशेष योग्यता तथा दूसरे गुण होनेपर ही वह धर्मगुरु पदके योग्य होता है—रोमन कैथोलिक तथा ईसाई धर्मके दूसरे सम्प्रदायोंमें भी साधु बननेकी प्रथा दिनप्रतिदिन कम होती जा रही है। दुनियामें रहकर अपने उपयोगके लिये जितना हो सके, कम खर्च करना तथा दूसरोंको सुखी करनेके लिये जितना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बन सके, उतना बचाकर परोपकार करनेकी भावना प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मुक्तिसेना (साल्वेशन आर्मी) तथा मिश्नरियोंका भी संन्याससे कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका मुख्य कार्य सेवा है और इसीके द्वारा वे साधारण जनतामें अपने संस्कार डालते हैं।

पारसी धर्म

पारसी धर्मके अनुयायी गृहस्थ बेहदीन कहलाते हैं, धर्मगुरु दस्तूर और धर्मक्रिया करनेवाले मोवेद। दस्तूर और मोवेद भी गृहस्थोंकी तरह घरबार वाले होते हैं। दुनियाका त्याग करके संन्यास लेनेका उनमें कोई विधान नहीं है।

बौद्ध धर्म

बौद्धधर्ममें संन्यासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवनमें एक बार भिक्षु बनना प्रत्येक बौद्ध धर्मानुयायी अपना कर्तव्य समझता था, किन्तु अब यह प्रथा शिथिल हो गई है। बौद्ध संन्यासमें एक विशेषता यह है कि भिक्खु (भिक्षु) बननेके बाद यदि कोई व्यक्ति गृहस्थ बनना चाहे, तो सामाजिक या धार्मिक किसी भी दृष्टिसे बुरा नहीं समझा जाता। दुबारा गृहस्थ होनेपर वह अपनी संपत्तिका अधिकारी माना जाता है। विवाह आदि सामाजिक कार्यों में भी उसे किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ती। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार जितने समयके लिये चाहे भिक्खु रह सकता है और फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके शादी वगैरह कर सकता है। इसलिए बौद्ध-दीक्षा अंगीकार करते समय व्यक्ति किसी जोखममें नहीं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पड़ता। जिस प्रकार शिक्षाके लिए कुछ वर्ष विश्वविद्यालय या गुरुकुल में व्यतीत कर विद्यार्थी अपने घरेलू धन्धोंको सँभाल लेता है, उसी प्रकार धार्मिक शिक्षा तथा चारित्र सुधारके लिए कुछ दिन भिक्खु बनकर फिर गार्हस्थ्य अंगीकार किया जा सकता है। इसीलिए बौद्धधर्ममें जीवनसुधारके लिए एक दीक्षा ग्रहण करनेका सभीके लिए विधान है। इसके बाद यदि कोई आजन्म भिक्खु रहना चाहे तो रह सकता है, नहीं तो गृहस्थ बन सकता है। भिक्षुके लिए भिक्षा-वृत्ति, कन्था धारण, यम, नियम आदिका पालन आदि बातें तात्त्विक दृष्टिसे प्रायः हिन्दू धर्मके समान ही हैं।

हिन्दू धर्म

कर्मयोग तथा कर्मसंन्यासके विषयको लेकर हिन्दू धर्मग्रन्थोंमें विस्तृत चर्चा है। गीतामें संन्यासकी अपेक्षा कर्मयोगको विशेष माना है। हमें यहाँ पर संन्यास और उसके अधिकारीके बिषयमें कुछ कहना है। मनुस्मृतिमें लिखा है—

बनेषु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत॥

मनु. अ. ६, श्लो. ३३

मनुस्मृतिमें आयुके चार भाग किए गये हैं। पहले भागमें ब्रह्मचर्यका पालन करके विद्याध्ययन करना चाहिए। दूसरेमें गार्हस्थ्य जीवन बिताना चाहिए। तीसरे भागमें बनवास अर्थात् वानप्रस्थ रहकर चौथेमें संन्यास धारण करना चाहिये। यदि मनुष्यकी पूर्ण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आयु १०० वर्षकी मानी जाय, तो वह ७५ वर्षकी आयुमें संन्यास का अधिकारी होता है।

श्रुति और स्मृतियोंके अनुसार वर्णधर्म और आश्रमधर्मका पालन करना ही हिन्दूधर्मका लक्ष्य है। आश्रमधर्मकी मर्यादानुसार जीवनकी चतुर्थ अवस्थासे पहले किसीको संन्यासका अधिकार नहीं है। इसी आदर्शको लेकर महाकवि कालीदासने रघुवंशी राजाओंकी चर्या बताते हुए रघुवंशमें कहा है—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

मनुस्मृतिमें तो यहाँ तक लिखा है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः॥
अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥
अनधीत्य द्विजोवेदान् अनुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वाचैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छान् व्रजत्यधः॥

मनु० अ० ६ श्लो० ३५–३६-३७

हिन्दू धर्मानुसार प्रत्येक व्यक्तिपर तीन ऋण होते हैं। उनमें से ऋषियोंका ऋण विधिपूर्वक वेदाध्ययन करनेसे, पितरोंका ऋण पुत्रोत्पत्तिसे और देवोंका ऋण यज्ञ करनेसे दूर होता है। इन तीनों ऋणोंके दूर होनेपर ही मोक्ष साधनाकी ओर मनको लगाना चाहिये। इन्हें बिना उतारे मोक्षकी आराधना करनेवाला अधो-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गति प्राप्त करता है। विधिपूर्वक वेदोंको पढ़कर, धर्मानुसार पुत्रोंको उत्पन्न करके और शक्त्यनुसार यज्ञ करके फिर मोक्षमें मनको लगाना चाहिए। वेदोंको बिना पढ़े, पुत्रोंको बिना उत्पन्न किए तथा बिना यज्ञ किए मोक्ष चाहनेवाला अधोगति प्राप्त करता है।

याज्ञवल्क्य शंख तथा दूसरी सभी स्मृतियाँ प्रायः इसी बातका समर्थन करती हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति गृहस्थाश्रमके बाद भी संन्यासकी अनुमति देती है।

मनुस्मृतिमें संन्याससे पहले वानप्रस्थाश्रमके लिये कहा है—

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली पलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥

अर्थात् गृहस्थ जब अपने बाल सफेद, झुर्रियाँ पड़ी हुई चमड़ी तथा पौत्रको देख लेवे, तब वनका आश्रय ले।

इन सब प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता हैं कि हिन्दूधर्मकी स्मृतियां गृहस्थाश्रमसे पहले संन्यासका निषेध करती हैं।

अब हम इस विषयमें श्रुतियोंके भी थोड़ेसे प्रमाण दे देना आवश्यक समझते हैं—

शतपथ ब्राह्मणके चौदहवें काण्डमें आया है—

"ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्,
गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।"

अर्थात्—ब्रह्मचर्याश्रमको समाप्त करके गृहस्थ बने, गृहस्थाश्रम को समाप्त करके वानप्रस्थ बने और उसके बाद प्रव्रज्या स्वीकार करे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उसी जगह एक दूसरा वाक्य है—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति। बृहदारण्यक उपनिषद् ३-५-१

अर्थात्—पुत्र, धन और यशःकीर्तिकी अभिलाषाओंसे निवृत्त होकर भिक्षुक बनते हैं।

जिस व्यक्तिमें उपरोक्त एषणाएं उत्पन्न ही नहीं हुई हैं, वह इनसे निवृत्त कैसे हो सकता है ?

यजुर्वेद ब्राह्मणमें आया है—

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदतं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्।

अर्थात्—प्राजापत्य यज्ञमें अपना सर्वस्व होम करके ब्राह्मण प्रव्रज्या अंगीकार करे।

गृहस्थके बिना दूसरेको प्राजापत्य यज्ञका अधिकार नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थाश्रमसे पहले प्रव्रज्या नहीं लेनी चाहिये।

अथर्ववेदीय जाबालोपनिषद्में ये वाक्य आये हैं—

"अथ हैनं जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवत संन्यासं ब्रूहीति। स हो वाच याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातकोऽस्नातको वा उत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्।"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वैदेह जनक याज्ञवल्क्य ऋषिके पास जाकर बोले—भगवन्! संन्यासके विषयमें बताइए। याज्ञवल्क्य ऋषिने कहा—ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहस्थ बनना चाहिये। गृहस्थ होकर वानप्रस्थ स्वीकार करना चाहिये और वानप्रस्थ होकर प्रव्रज्या अंगीकार करनी चाहिये। अथवा दूसरी प्रकारसे ब्रह्मचर्यके बाद ही प्रव्रज्या अंगीकार कर ले, गृहस्थाश्रमके बाद करे अथवा वानप्रस्थ होकर करे। अथवा जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो, उसी दिन प्रव्रज्या अंगीकार कर ले, फिर चाहे वह व्रती हो, अव्रती हो, स्नातक हो, अस्नातक हो, अग्निहोत्र करनेवाला हो या दूसरा हो।

इन वाक्योंको लेकर शङ्कराचार्य तथा दूसरे आचार्योंने गृहस्थाश्रमसे पहले भी संन्यासका विधान किया है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति जब चाहे संन्यास ले लेवे। शङ्कराचार्यने स्वयं लिखा है कि साधन चतुष्टय संपन्न व्यक्ति ही ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी होता है। वे इस प्रकार हैं—

(१) नित्यानित्यवस्तुविवेक—संसारमें कौनसी वस्तु नित्य या स्थायी है और कौनसी अनित्य या अस्थायी है, इसका भेदज्ञान अच्छी तरह होना चाहिये।

(२) इहामुत्रार्थभोगविराग—इस लोक और परलोकके सभी भोगोंसे विरक्ति।

(३) शमदमादि साधन सम्पत्—शम, दम आदिसे युक्त होना।

(क) शम—मनको दुनियावी धन्धोंसे हटाना।

(ख) दम—बाह्य इन्द्रियोंको वशमें रखना।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(ग) उपरति—ब्रह्मज्ञानके सिवाय सभी कार्योंको छोड़ देना।

(घ) तितिक्षा—शीत और उष्ण आदि कष्टोंको मनमें किसी प्रकारका विकार बिना लाये सहन करना।

(ङ) समाधि—निद्रा, आलस्य और प्रमादका त्याग करके मनको ब्रह्म-चिन्तनमें लगाए रखना।

(च) श्रद्धा—वस्तु तत्त्व पर दृढ़ विश्वास।

(४) मुमुक्षुत्व—संसारमें छुटकारा पानेकी उत्कट इच्छा।

जिस व्यक्तिमें उपरोक्त गुण हों वही संन्यासका अधिकारी हो सकता है। अवस्था परिपक्व हुए बिना ऐसे गुण शंकराचार्य सरीखे किसी विरले महात्मामें ही प्राप्त हो सकते हैं। इस वाक्यका सहारा लेकर जनसाधारणको अपरिपक्व अवस्थामें संन्यासका अधिकार दे देना, उचित नहीं कहा जा सकता। इसीलिये कठोपनिषद्में कहा है—

नाविरतो दुश्चरितान्ना शान्तो नासमाहितः।
नाशान्त मानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैव माप्नुयात्॥

कठोपनिषद् २ वल्ली, मंत्र २३

अर्थात् जो व्यक्ति बुरे आचरणसे अलग नहीं हुआ, जो शान्त तथा समाहित नहीं है अथवा जिसका मन शान्त नहीं है, वह ज्ञानके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त नहीं कर सकता।

मुण्डकोपनिषद्में आया है—

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

मुण्डकोपनिषद् १ मु० २ खण्ड १२ मंत्र।

लौकिक भोगोंको कर्मसे संचित देखकर ब्राह्मण निर्वेदको प्राप्त करे और समझे कि अकृत ब्रह्म कृत अर्थात् यज्ञादिके द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। उसे जाननेके लिए वह हाथमें समित् लेकर ब्रह्मनिष्ठ तथा श्रोत्रिय गुरुके पास जाय।

इन सब उद्धरणोंसे पता चलता है कि हिन्दूधर्ममें सामान्य रूप से संन्यासका अधिकार चौथी अवस्थामें ही है। विशिष्ट वैराग्यसे संपन्न व्यक्ति पहले भी संन्यास ले सकता है, किन्तु यह सर्व साधारणके लिए नहीं है। 'नारदपरिव्राजक उपनिषद्' में ऐसे व्यक्तियोंकी गिनती की है जिन्हें दीक्षाका अधिकार नहीं है, उनमें बालकको भी गिना गया है।

व्यवहारकी दृष्टिसे देखा जाय तो हिन्दूधर्ममें आजकल बड़ी उमरमें भी वास्तविक संन्यास लेनेवाले बहुत थोड़े होते हैं। गृहस्थाश्रमसे निवृत्त होनेपर भी ब्राह्मणोंमेंसे कोई-कोई संन्यास ग्रहण करता है, वह भी जीवनके अन्तिम वर्षोंमें। बहुत दफा तो यह संन्यास मृत्युसे कुछ ही समय पहले लिया जाता है। संन्यासी होनेकी इच्छा वाले व्यक्तिका सिर मूण्ड दिया जाता है, यज्ञोपवीत तोड़ दिया जाता है, रुद्राक्षमाला तथा भगवें कपड़े पहिना दिए जाते हैं, हाथमें दण्ड देकर गिरि, पुरी, वन, तीर्थ, आश्रम, सरस्वती आदि शब्दोंसे अन्त होनेवाले नवीन नाम रख दिए जाते हैं। इनके सिवाय दूसरे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भी अनेक प्रकारके साधु होते हैं अथवा साधुकी तरह रहते हैं वे जोगी कहलाते हैं। इनमें किसी भी जातिका व्यक्ति दीक्षित हो सकता है। योंगियोंमें भी बहुतसे सम्प्रदाय होते हैं। उनमें कनफटे और औघड़ मुख्य हैं। वे रुद्राक्षकी माला पहिनते हैं, केवल लंगोटी बांधते हैं अथवा गेरुए रंगके कपड़े पहिनते हैं। सिर पर जटा रखते हैं और मस्तक तथा सारे शरीरमें भभूत रमाते हैं। उनमेंसे कोई मठमें रहते हैं और कोई घूमते रहते हैं। कनफटोंमें कानके निचले हिस्सेमें लकड़ीकी बाली डाली हुई होती है। उनके नामके अन्तमें नाथ शब्द लगा रहता है। औघड़ोंके नामके साथ दास लगा रहता है। उनके गलेमें काले डोरेमें पिरोई हुई एक लकड़ीकी भोंगली लटकती रहती है। योगियोंमें कुछ तो अच्छे चारित्रवाले तथा संयमी होते हैं, किन्तु अधिकतर अज्ञान, ढोंगी तथा केवल पेट के लिये योग लिए फिरते हैं। ऐसे योगी जब किसी स्त्रीके साथ कौटुम्बिक जीवन बिताने लगते हैं, तो गोसांई, योगी, रावलिया, भरथरी आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। गोसांई आदि जातियां ऐसे ही योगीयोंके कारण बनी हैं।

मारवाड़में हिन्दू साधु दो भागों विभक्त हैं—शैव और वैष्णव। शैव सम्प्रदायके साधु ब्रह्मचारी, संन्यासी, दंडी या परमहंसके रूप में रहते हैं। वैष्णवोंमें रामानुज, रामानंदी, रामस्नेही, स्वामि-नारायण और सन्तराम ये मुख्य संप्रदाय हैं। पुष्टिमार्गी अर्थात् वल्लभ संप्रदायके आचार्य घरबारी होते हैं। उनमें सामान्य साधु होते ही नहीं। स्वामिनारायण संप्रदायके आचार्य तो घरबारी होते हैं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और दूसरे साधु ब्रह्मचारी। दूसरे सम्प्रदायोंमें अधिकतर आचार्य तथा साधु दोनों ब्रह्मचारी होते हैं।

इन सम्प्रदायोंमें मठाधीशोंका ठाट-बाट बड़े-बड़े रईसोंकी तरह होता है। वे बड़ी-बड़ी जागीरों तथा दूसरी सम्पत्तियोंके मालिक होते हैं। भक्त लोग बड़ी-बड़ी भेटें चढ़ाते हैं इसलिए उन्हें कमाने की चिन्ता नहीं रहती। उनके ऐश्वर्यको देखकर मठाधीश बननेकी लालसा से चेले भी बहुत मिल जाते हैं। उनमें और गृहस्थोंमें इतना ही फरक रहता है कि वे सिर मुंड़ाए रहते हैं, भगवें कपड़े पहनते हैं और प्रायः विवाह भी नहीं करते। बाकी सभी काम-काज उनके एक जागीरदारके समान चलते हैं। इनमें कुछ साधु ऐसे भी मिलते हैं, जो संसारसे वास्तवमें विरक्त होते हैं। वे अपना जीवन ज्ञान-साधना, दुखियोंकी सेवा अथवा तपस्यामें लगा देते हैं। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इसी भावनामें वे दिन रात लगे रहते हैं। किन्तु ऐसे साधु बहुत थोड़े होते हैं।

अधिकतर हिन्दू-साधुओंमें कपड़ोंके सिवाय और कोई साधुत्व का गुण नहीं होता। साधु, संन्यासी इत्यादि नाम धारण करके बहुतसे लोग मन्दिर, तीर्थस्थान तथा मेलोंमें इधर उधर पड़े हुए या टोलेके टोले भटकते नज़र आते हैं। वे सब हिन्दू-धर्मशास्त्रानुसार दीक्षा लिए हुए साधु नहीं होते। भावुक हिन्दू विशेषतया स्त्रियां उन्हें महाराज, बाबाजी आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं। इस प्रकार हिन्दू समाजकी श्रद्धा और अज्ञानताके कारणसे लाखों ढोंगी पोषे जाते हैं। ऐसा कोई दुर्व्यसन नहीं है, जो उनमें नहीं पाया जाता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्त्रियों और बच्चोंको भगाना, चोरी करना, बुरे बुरे रोग फैलाना तथा हिन्दू समाजकी जड़को खोदना ही उन लोगोंका कार्य है। भारतवर्षमें इनकी संख्या सत्तर लाख है, जो मेहनत मजदूरी करना पसन्द नहीं करते। जो हिन्दू समाजकी पवित्रताका अभिशाप बने हुए हैं और जिनके भरण पोषणका भार उठाकर हिन्दू समाज दिन प्रतिदिन दरिद्र होता जा रहा है। जो प्लेगके चूहोंकी तरह जिस समाजमें पलते हैं, उसीका सत्यानाश कर रहे हैं।

हिन्दू समाजमें ऐसा कोई भी संगठन नहीं है, जो इस साकार प्लेगका प्रतीकार कर सके। राज्यशक्तिके बिना इसका प्रतीकार असंभवसा है।

जैन धर्म

जैनधर्ममें संन्यासको दीक्षा या आर्हती दीक्षा कहते हैं। इसमें मुख्य दो सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। दिगम्बर साधु बहुत थोड़े हैं, वे बिल्कुल नग्न रहते हैं, तथा कठोर चर्याका पालन करते हैं। इनमें श्रावकके व्रतोंसे प्रारम्भ करके उत्तरोत्तर कठोर चर्याका पालन करते हुए इने गिने व्यक्ति मुनि बनते हैं। समस्त भारतवर्षमें दिगम्बर मुनियोंकी संख्या १५ से अधिक नहीं है। किसी बालकके लिये दिगम्बर मुनि होना असंभव सा है। मारवाड़में दिगम्बर मुनियोंका अभाव सा है।

श्वेताम्बरोंमें तीन फिरके हैं—मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथी। श्वेताम्बर साधु वस्त्रधारी होते हैं। बस्तीमें रहते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैनसिद्धान्तानुसार आत्मा कर्मबन्धनके कारण संसारमें भटक रहा है। कर्मोंका आत्मासे पृथक् हो जाना ही मोक्ष है। कर्मबन्धन से छुटकारा पानेके दो मार्ग हैं—श्रावक धर्म और साधु धर्म। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रममें रहते हुए मर्यादा पूर्वक धर्मकी आराधना करना चाहते हैं, उनके लिए श्रावक धर्म है। श्रावकके लिए बारह व्रतोंका विधान है। अपनी आवश्यकताओंको उत्तरोत्तर कम करते हुए पाप की प्रवृत्तिको रोकते जाना श्रावकका कर्तव्य है। श्रावकके व्रतोंके बाद उत्तरोत्तर विकासके लिए ग्यारह प्रतिमाएँ (श्रेणियाँ) हैं। जो व्यक्ति और ऊँचा उठना चाहता है, उसके लिए मुनिधर्म है। मुनियोंके लिए पाँच महाव्रत पालन करनेका विधान है—

(१) अहिंसा—किसी प्राणीकी हिंसा मन वचन अथवा शरीर से न स्वयं करना, न दूसरेको करनेके लिए कहना और न करने-वालेका अनुमोदन करना।

(२) सत्य—किसी प्रकारका असत्य वचन मन, बचन और शरीरसे न स्वयं बोलना, न दूसरेको बोलनेके लिए कहना और न बोलनेवालेका अनुमोदन करना।

(३) अचौर्य—किसी प्रकारकी चोरी न करना।

(४) ब्रह्मचर्य—पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना।

(५) अपरिग्रह—किसी वस्तु तथा अपने शरीरपर भी ममत्व न रखना।

उपरोक्त पाँच बातें अणुव्रतके रूपमें श्रावकके लिये भी विहित हैं, किन्तु उनका स्वरूप इतना उग्र नहीं है। श्रावक निरपराधको

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मारनेकी बुद्धिसे नहीं मारता। अपराधीको दण्ड देनेका उसे त्याग नहीं होता। किन्तु साधुको अपनी पूजा करने वाले तथा पीटनेवाले दोनों पर समान भाव रखना चाहिए। जैनधर्मानुसार पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतिमें भी जीव हैं। उनकी हिंसामें भी पाप लगता है। श्रावक इस पापका पूर्ण त्याग नहीं कर सकता। साधुको इन सबकी हिंसाका भी त्याग होता है। साधु हिंसाके किसी कार्यका अनुमोदन भी नहीं कर सकता। भोजन, मकान, वस्त्र आदि उपयोगकी सभी वस्तुओंके निर्माणमें हिंसा होती है। इस लिए इन वस्तुओंका उपयोग करते समय भी साधुको बहुत विचार करना पड़ता है। साधु भोजन केवल इसलिये करे कि उससे शरीर रक्षा होती है और शरीरके द्वारा धर्माराधन हो सकता है। इसी प्रकार मकान और वस्त्र आदिको भी केवल धर्माराधनके उद्देश्यसे स्वीकार करे। अच्छे-अच्छे मकान, भोजन अथवा वस्त्र आदिकी प्रशंसा करना; उन्हें आशक्ति पूर्वक ग्रहण करना साधुके लिए सर्वथा वर्जित है। कुविचार, उतावल, द्वेष, किसीका बुरा चाहना आदि सभी बातें हिंसाके अन्तर्गत हैं और साधुके लिए वर्जित हैं। हँसी मज़ाकमें या जिस असत्यसे किसी दूसरेको नुक्सान नहीं पहुंचता, ऐसा असत्य बोलनेका श्रावकको त्याग नहीं होता। किन्तु साधुके लिए हँसी मज़ाकमें भी असत्यका त्याग होता है। विचार वाणी अथवा आचरणमें किसी प्रकारका दिखावा, ढोंग या दूसरेको ठगनेकी वृत्ति आना असत्य है। जिस विचार अथवा वाणीसे दूसरेको नुकसान पहुंचे, वह भी असत्य है। मुनिके लिए इन सब असत्योंका त्याग करना आवश्यक है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी प्रकार अचौर्य तथा ब्रह्मचर्य व्रतोंके लिए भी है। मनमें किसी प्रकारके बुरे विचार आना अब्रह्मचर्य है। इसके लिए जिह्वा स्वाद पर नियंत्रण तथा वातावरणका पवित्र रहना अत्यन्त आवश्यक है।

अपरिग्रह महाव्रत तो सबसे कठिन है। धर्माराधनके लिए आवश्यक वस्तुओंके सिवाय अपने पास कुछ न रखना एवं वस्त्र, पात्र, शिष्य तथा अपने शरीर पर भी ममत्व न रखना अपरिग्रह व्रत है।

इनके सिवाय साधुओंके लिए पाँच समिति तथा तीन गुप्तिका विधान है। भोजनके लिए ४७ दोषोंका टालना आवश्यक है। यदि साधु अपने लिए बना हुआ भोजन लेता है, इतना लेता है कि उसके बाद दाताको अपनी आवश्यकताके लिए फिर बनाना पड़े, मीठे तथा रसीले और रूखे सूखे भोजनमें किसी प्रकारकी भेद बुद्धि रखता है तो ये सब आहारके दोष हैं।

इनके सिवाय बाईस परिषह बताए गए हैं जिन्हें साधुको सहना चाहिए। उनमें शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा, दंश, मशक निंदा आदि इतने कठोर हैं कि साधारण व्यक्ति नहीं सह सकता। पैदल बिहार सरदी तथा गरमीमें न जूते पहिनना न पगड़ी या छाता आदि रखना, केश लोच, पासमें एक भी पैसा न रखना, कड़कड़ाती सरदीमें भी तीन चद्दरोंसे अधिक वस्तु न रखना, अपना सारा सामान उठा कर चलना आदि और भी कठोर चर्याएं हैं। जिसने संसारके सभी अनुभव ले रखे हैं, ऐसा कोई-कोई व्यक्ति ही योग्य हो सकता है। आजकलके भोले बालक तो इसका स्वरूप भी नहीं समझ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकते। उनसे मुनिव्रत पालन करनेकी आशा करना अंगुलीसे पहाड़ उठानेकी आशाके समान है।

दीक्षार्थीके गुण

इस प्रकारके कठोर व्रतके लिए कौन योग्य हो सकता है—यह बतानेके लिए शास्त्रोंमें पर्याप्त रूपसे कहा गया है। हरिभद्रसूरिने धर्मबिंदु नामक ग्रन्थमें दीक्षार्थीमें नीचे लिखी सोलह बातोंका होना आवश्यक माना है—

(१) आर्यदेशमें उत्पन्न हुआ हो।

(२) उच्च जाति तथा कुल वाला हो।

(३) जिसके कर्ममल क्षीणप्राय हो गये हों।

(४) निर्मल बुद्धिवाला हो।

(५) मनुष्य जन्म दुर्लभ है, जन्म होना मृत्युका कारण है, संपत्तियाँ चंचल हैं, इन्द्रियोंके विषय दुःखके हेतु हैं, संयोगमें वियोग अवश्य रहता है, प्रत्येक प्राणीकी क्षण-क्षणमें मृत्यु होती रहती है, कर्मके फल भयङ्कर हैं, इत्यादि बातोंसे संसारकी असारता समझने वाला।

(६) उपरोक्त कारणोंसे संसारसे विरक्ति धारण करनेवाला।

(७) मन्द कषाय वाला।

(८) मन्द हास्यादिवाला।

(९) कृतज्ञ अर्थात् दूसरे द्वारा किए हुए उपकारको मानने वाला।

(१०) विनय वाला।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(११) दीक्षा लेनेसे पहले राजा, प्रधानमन्त्री तथा अपने ग्रामसे प्रतिष्ठा प्राप्त ।

(१२) किसीके साथ झगड़ा नहीं करनेवाला ।

(१३) सुन्दर तथा पूर्ण अंगों वाला । अर्थात् जिसकी पाँचों इन्द्रियाँ पूर्ण हों और आकृति भव्य हो ।

(१४) श्रद्धावाला ।

(१५) दृढ़तावाला । जो विघ्न आनेपर भी प्रारम्भ किये हुए कार्यको न छोड़े ।

(१६) दीक्षा लेने अर्थात् धर्मके लिए आत्मसमर्पण करनेके लिए जो स्वयं आया हो ।

उपरोक्त सोलह गुणों वालेको दीक्षाका अधिकारी माना गया है । (धर्मविन्दु अ० ४ सूत्र ६ तथा धर्मसंग्रह अधि० ३ गा० ७३-७८)

दीक्षाके अयोग्य

दीक्षार्थीके गुण बतानेके साथ-साथ ऐसे व्यक्तियोंको भी बताया गया है, जो दीक्षाके योग्य नहीं होते । 'आचार दिनकर' में नीचे लिखे अठारह व्यक्ति दीक्षाके अयोग्य बताये गये हैं ।

बाले बुड्ढे नपुंसेय क्लीवे जड़े य वाहिए ।
तेणे रायावगारीय उमंतेय अदंसणे ॥
दासे दुट्ठय मुड्ढे य अणत्ते जुंगीय इय ।
ओबद्धए य भय ए सेहनिप्फेडिया इय ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(१) बालक।

(२) वृद्ध। जो विहार तथा भिक्षा आदिमें असमर्थ हो।

(३) क्लीव। स्त्रीके अंग देखकर कामातुर होनेवाला।

(४) नपुंसक।

(५) जड़ अर्थात् स्थूल या निकम्मा। यह तीन प्रकारका होता है—

(क) भाषाजड़—जिसका उच्चारण खराब हो जिसे सभ्यता-पूर्वक बोलना न आता हो अथवा जिसकी भाषा कोई समझ न सके।

(ख) शरीर जड़—जिसका शरीर बहुत स्थूल हो।

(ग) करण जड़—जो अपांग अथवा विकलेन्द्रिय हो।

(६) व्याधित—रोगी।

(७) स्तेन—किसी प्रकारकी चोरी करनेकी आदत वाला। यदि कोई चोर चोरी छोड़नेकी प्रतिज्ञा करके दीक्षा लेना चाहे, तो उसे भी शीघ्र दीक्षा न देनी चाहिए। कई वर्ष उसके चालचलनकी जाँच करनी चाहिए।

(८) राजापकारी—किसी प्रकारसे राज्य अथवा राजपरिवार का गुनहगार।

(९) उन्मत्त—पागल।

(१०) अन्ध।

(११) दास—खरीदा हुआ दास अथवा खरीदी हुई दासीसे उत्पन्न व्यक्ति जो पैदा होते ही गुलाम माना जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(१२) दुष्ट—कषाय और इन्द्रिय विषयोंके अधीन रहनेवाला।

(१३) निर्बुद्ध—जिसकी स्मरण शक्ति इतनी खराब हो कि तीर्थङ्करोंके नाम भी याद न रख सके।

(१४) ऋणी—राजा, व्यापारी अथवा और किसीके कर्जसे दबा हुआ।

(१५) जुंगित—वेश्यादि किसी निन्दित पेशेवाले घरमें उत्पन्न हुआ अथवा नीच कर्म करनेवाला।

(१६) अवबद्ध—धन अथवा विद्याग्रहण आदिके लिए जो अमुक समयके लिये बँधा हुआ हो, जिसके दीक्षा देनेसे बन्धनकी शर्तें टूटती हों।

(१७) भृत्य—दैनिक अथवा मासिक वेतन पर काम करने वाला। ऐसा व्यक्ति जब तक अपने कार्यको पूरा करके नौकरीसे अलग नहीं हो जाता, तब तक दीक्षा का अधिकारी नहीं होता।

(१८) शिष्यनिष्फेटिका—जिसे दीक्षा देनेकी माता पिताकी आज्ञा न हो अथवा बड़ोंकी अनुमतिके बिना भगाकर लाया गया हो।

जिस प्रकार अठारह प्रकारके पुरुषोंको दीक्षाके अयोग्य बताया है, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी दीक्षाके अयोग्य हैं। उपरोक्त अठारहके सिवाय नीचे लिखे दो प्रकारकी स्त्रियां भी दीक्षा योग्य नहीं होतीं।

(१) गर्भवती।

(२) दूधपीते बच्चे वाली।

आचार दिनकर पत्र ७४, धर्मसंग्रह अ० ३ गा० ७८

तथा प्रवचन सारोद्धार १०७-१०८ द्वार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दीक्षा देनेवालेके गुण

दीक्षार्थीके सिवाय दीक्षा देनेवालेमें भी नीचे लिखे पन्द्रह गुणों का होना आवश्यक बताया गया है—

(१) जिसने स्वयं विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की हो।

(२) गुरुकुलकी अच्छी तरह उपासना करनेवाला हो।

(३) अस्खलित रूपसे ब्रह्मचर्य पालनेवाला हो।

(४) जिसने आगमोंका अच्छी तरह अध्ययन किया हो।

(५) निर्मल ज्ञानके द्वारा तत्त्वको जानने वाला।

(६) उपशान्त अर्थात् मन, वचन और शरीरके विकारोंको रोककर उन्हें वशमें रखने वाला।

(७) साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघके प्रति वात्सल्य वाला।

(८) प्राणिमात्रका कल्याण करनेमें तत्पर रहनेवाला।

(९) जिसकी बात सभी मानते हों।

(१०) गुणी पुरुषोंका अनुसरण करने वाला।

(११) गम्भीर।

(१२) विषाद (शोक) रहित।

(१३) उपशम लब्धि वाला।

(१४) सिद्धान्तके अर्थका उपदेश करनेवाला।

(१५) गुरुके पाससे जिसे गुरुपद प्राप्त हो चुका हो।

धर्मसंग्रह अधिकार ३ गाथा ८०—८४

धर्मबिन्दु अध्याय ४ सूत्र ७

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बालदीक्षा निषेधके लिये शास्त्रीय प्रमाण

हरिभद्रसूरिने पंचाशक गा० ४६ तथा ५० में कहा है कि यह दुषमाकाल अशुभ परिणाम वाला है। इस कारणसे इस कालमें चारित्रका पालन होना कठिन है। दीक्षा लेनेवालोंको पहले पडिमाओंका अभ्यास करके बादमें दीक्षा लेनी चाहिए।

धर्माविन्दु अ० ४ सू० २४ में दीक्षार्थीसे प्रश्न करने, उसका आचार देखने तथा दूसरी प्रकारसे उसकी परिक्षा करनेका विधान है। उस समय जैसी परीक्षाके लिये कहा गया है, उसमें योग्य उमर का व्यक्ति ही पास हो सकता है। बालक तो उन प्रश्नोंको समझ भी नहीं सकता।

श्री वर्धमानसूरिने 'आचार दिनकर' में कहा है—सम्यक्त्व तथा बारह व्रतोंको निर्दोष पालनेवाला, भोगोंकी इच्छासे शान्त, वैराग्यकी भावना वाला, जिसके गार्हस्थ्य सम्बन्धी मनोरथ पूरे हो गए हैं, पुत्र, पत्नी, अथवा स्वामी आदिकी सहर्ष अनुमति प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मचर्य व्रतके योग्य होता है। ब्रह्मचर्य व्रत लेनेके बाद ब्रह्मचारीको कैसे रहना चाहिये, इस विषयमें लिखा है—चोटी लंगोट आदि धारण करके तीन वर्ष तक मौन रहकर शुभ ध्यान तथा पवित्र विचारोंमें लीन रहना चाहिए। तीन वर्ष तक मन, बचन और शरीरसे शुद्ध ब्रह्मचर्य पालनेके बाद दीक्षा अंगीकार करनी चाहिए। यदि उस समय ब्रह्मचर्यका खण्डन हो जाय, तो फिर गृहस्थावास स्वीकार कर लेना चाहिए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हरिभद्रसूरिने षोडशक प्रकरणमें लिखा है—जो मनुष्य चारित्र वाला है, वही त्यागरूप दीक्षाका अधिकारी होता है। शिष्य संख्या बढाने, भिक्षा आदिके द्वारा सेवा कराने अथवा किसी दूसरे ऐहिक प्रेयोजनसे रहित होकर केवल शिष्यके कल्याण तथा कर्मोंकी निर्जरा के लिये दीक्षा देनी चाहिये।

तेरापंथी सम्प्रदायके आदि प्रवर्तक श्री भीखणजी स्वामीने अपनी 'सरधा आचारकी चोपइ' नामक कृतिमें अयोग्य और बाल वृद्ध दीक्षाके सम्बन्धमें शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर लिखा है—

सरधा आचारकी चोपई श्री भीषणजी कृत

विवेक बिकलने सांग पहरावे, भेला करे आहार जी।
सामग्रीमें जाय बन्दावे, फिर फिर करे खुवारजी॥
साध म जाणो इण आचारे॥ २३॥ ढ़ाल १

अजोगने तो दिख्या दीधां, ते भगवन्तरी आज्ञा बारजी।
नशीत रो दंड मूल न मान्यो, बिटल हूवा बेकारजी॥
साध म०॥ २४॥ ,,

आछो आहार देखाए तिणने, कपड़ा दिक मोह दिखाय जी।
इत्यादिक लालच लोभ बताए, भालांने मुंडे भरमाय जी॥
साध म०॥ ५३॥ ढ़ाल ६

इण बिध चेलाकर मत बांधे, ते गुण बिण कोरो भेषजी।
साधपणेरो सांग पहराए, भारी हुवे विशेषजी॥
साध म०॥५४॥ ,,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मूण्ड मूण्डावो मेलो कीधो, त्यांस्युं पले नहीं आचारजी ।
भूख तृषा खमणी नां आवे, जब लेवे अशुद्ध आहारजी ॥
साध म० ॥ ५५ ॥ ढ़ाल ६

अजोग ने दीक्षा दीध्यां ते, चारित्र रा हूवे खंडजी ।
नशीथ रो उद्देशो इग्यारमो, चोमासी रो डंडजी ॥
साध म० ॥ ५६ ॥ ,,

विवेक विकल बालक बूढ़ाने, पहरावे सांग सताब जी ।
त्यां ने जीवादिक पदार्थ नव रा, जाबक नां आवे जाब जी ॥
साध म० ॥ ५७ ॥ ,,

शिष करणो तो निपुण बुध वालो, जीवादिक जाणे तायजी ।
नहीं तो एकलो रहणों टोलामें, उतराध्येन बत्तीस मां मांयजी
साध म० ॥ ५८ ॥ ,,

जीवादिक जाणे नहीं तेहने, पांचूं ई महाव्रत उचरावे रे ।
साधु रो सांग पहिरायने, भोला लोकांने पगां लगावे रे ॥
इणविध ओलखो नवकड़ा ॥ २२ ॥ ढ़ाल ११

बालक बूढ़ो देखे नहीं, थारे पाने पड़े ज्युं ज्युं मूण्डे रे ।
नामनां करवा आपरि, ते तो मान बड़ाई स्युं बूडे रे ॥
इण० ॥ २३ ॥ ,,

चेला चेली करणे रा लोभिया रे, एकान्त मत बांधण रे काम रे ।
बिकलां ने मूंड र भेला किया रे, दराय गृहस्थ ने रोकड़ा दामरे ॥
पाखंड बघसी आरे पंचमे रे ॥११॥ ढ़ाल ३

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दीक्षा और मूल आगम

मूल आगमोंमें भी कई स्थानों पर बड़ी उम्र वालेको दीक्षा देने को कहा है। थोड़े उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

आचारांग सूत्रके अध्ययन ८ उद्देश ३ गाथा १ में लिखा है—

मज्झिमेणं वयसा एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिता।

(युवा, प्रौढ़ तथा वृद्ध इन तीनोंमें) मध्यम अर्थात् प्रौढ़ अवस्था वाला बुद्धि परिपक्व होनेके कारण दीक्षाके विशेष योग्य होता है।

ठाणांग सूत्रके दसवें ठाणेमें दस प्रकारके मुण्ड बताये गये हैं— कान, नाक, आँख, जीभ और स्पर्शन इन पाँच इन्द्रियोंसे मुण्डित अर्थात् इनके विषयोंको जीतने वाला; क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंसे मुण्डित अर्थात् इन कषायोंको नष्ट कर देने वाला; और दसवाँ शिरोमुण्ड अर्थात् लोच करके सिरको मुण्डाने वाला। इसका अर्थ यही है कि क्रमशः नौ बातोंमें मुण्डित हो जाने पर फिर सिर मुण्डाना चाहिये।

दशवैकालिक सूत्रके दसवें 'स भिक्खु' नामक अध्ययनमें साधु का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

जो सहइ हु गाम कंटय, अक्कोस पहार तज्जणाओ।
भय भेरव सद्द सप्पहासे, सम सुह दुक्ख सहे अ जे स भिक्खू॥

भावार्थ—जो व्यक्ति ग्राम कंटक अर्थात् अपरिचित गांवमें जाने पर होने वाले सभी कष्टोंको सहता है। जहाँ कुत्ते विचित्र रूप देख कर काटनेको दौड़ते हैं, गांवके बालक इकट्ठे होकर पीछे लग जाते हैं और गालियाँ देने तथा पत्थर फेंकने लगते हैं, भिक्षाके लिये

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जाने पर तरह-तरहकी फटकारें सुननी पड़ती हैं, इन सबको ग्राम-कंटक कहा जाता है। आक्रोश, प्रहार, तर्जना, भय, भयंकर रूप तथा शब्द और मजाक आदिको सहने वाला तथा सुख और दुःखमें समान रहने वाला भिक्षु होता है।

पडिमं पडि वाज्जिया मसाणे, नो भायए भय भेरवाइं दिअस।
विविह गुण तवोरए अ निच्चं, न सरीरं चाभिकंखए स भिक्खू॥

जो श्मशानमें प्रतिमा अंगीकार करके किसी प्रकारके भयंकर शब्द अथवा रूपोंसे न डरे। सदा ज्ञान, दर्शन आदि गुण तथा तपस्यामें लगा रहे, शरीरकी भी आकांक्षा न करे वही भिक्षु है।

असकय बोसट्ठचत्त देहे, अकुट्ठे व हए लूसिए वा।
पुठविसमे मुणी हविज्जा, अपियाणे अकोडहले जे स भिक्खू॥

जो अपने शरीरको बार-बार त्याग देता है अर्थात् उससे ममत्व नहीं रखता। किसीके द्वारा फटकारा जाने पर, मारा जाने पर अथवा नोचा जाने पर (मुनि) पृथ्वीके समान हो जाता है। जो न अपनी तपस्याके फलकी कामना करता, न किसी बातके लिये उत्कंठित रहता है वही भिक्षु है।

हत्थ संजए पाय संजए, बाय संजए संजए इंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा, सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू॥

जो हाथ, पैर, वाणी तथा इन्द्रियोंसे संयत होता है। आत्म-विचार तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपमें लीन रहता है तथा सूत्रार्थको जानता है वही भिक्षु है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अलोल भिक्खू न रसेसु गिज्झे,
उंछं चरे जीवि अनामि कंखी।
इड्ढिं च सक्कारण पूअणं च,
चए ठिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥

चंचलतासे रहित भिक्षु रसों में गृद्ध न होवे। जीवित रहनेकी भी आकांक्षा न करता रूखा-सूखा भोजन करे। ऋद्धि, सत्कार तथा पूजा छोड़ दे। जो आत्मामें स्थिर तथा इच्छा रहित होकर विचरता है, वही भिक्षु है।

न परं वएज्जासि अयं कुसीले,
जेणं च कुप्पिज्ज न तं वएज्जा।
जाणि अ पत्ते अं पुण्णपावं,
अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू ॥

जो दूसरेको कुशील न बनावे, कोई ऐसी बात न कहे जिससे दूसरेको क्रोध हो, पुण्य और पाप को जान कर आत्माके उत्कर्षमें लगा रहे, वही भिक्षु है।

न जाइमत्ते न य रूपमत्ते,
न लाभमत्ते न सुएण मत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता,
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ॥

जो जाति, रूप, लाभ तथा शास्त्रज्ञानका घमंड नहीं करता। सभी मदोंको छोड़ करे जो धर्मध्यानमें लगा रहता है, वही भिक्षु है।

साधु बननेकी उपरोक्त बातें आजकल छोटे बालकोंमें आना कठिन हो नहीं असम्भव है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अयोग्य दीक्षाके लिए शास्त्रीय निषेध

अयोग्य व्यक्तिको दीक्षा देना मूल सूत्रोंमें निषिद्ध है। भगवती सूत्र शतक १ उद्देश १ में आया है—

"असंबुडेणं भंते अनगारे सिज्झई बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमन्ते करेइ ?"

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेण भंते जाव अंतं न करेइ !

गोयमा असंबुज्झे अणगारे आयु अवज्जाओ सत्तवम्भ पयडीओ सिढिल बन्धन बंधाओ घणीय बंधण बंधाओ पकरेइं, रहस्सकाल ठिइआओ दीहकाल ठिइआओ पकरेइ, मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्प पएसगाओ बहुपएसगाओ पकरेइ।

भावार्थ—गौतम स्वामी भगवान् महावीरसे पूछते हैं—

हे भगवन् ! जो साधु पाप कर्मसे निवृत्त नहीं हुआ है, क्या वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो सकता है, निर्वाण प्राप्त कर सकता है तथा सब दुःखोंका अन्त कर सकता है ?

'नहीं गौतम ! यह नहीं हो सकता' भगवान्ने उत्तर दिया।

क्यों भगवन् ! ऐसा साधु सिद्ध बुद्ध मुक्त आदि क्यों नहीं हो सकता ? गौतम स्वामीने फिर पूछा।

हे गौतम ! असंवृत (असंयतेन्द्रिय) अनगार आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी प्रकृतियां जो शिथिल बन्ध वाली हैं उन्हें दृढ बन्ध वाली करता है, जो थोड़े कालकी स्थिति वाली हैं उन्हें लम्बे कालकी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्थितिवाली करता है, जो मन्द फल देने वाली हैं उन्हें तीव्र फल वाली करता है, जो अल्प प्रदेश वाली हैं उन्हें अधिक प्रदेश वाली करता है।"

इसी प्रकार निशीथ सूत्रके ग्यारहवें उद्देशमें कहा है—

" जे भिक्खू णायगं व अणायगं वा उपासगं वा अणुवासगं वा जे अणलं पव्वावेइ पव्वावंतं वा साइज्जइ। जि भिक्खू अणलं उट्ठवेइ, उट्ठावंतं वा साइज्जइ। जे भिक्खू अणलेणं वेयावच्चं करेइ करेतं वा साइज्जइ। ते सेवमाणे आवज्जइ चउमासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइमं।"

अर्थात् चो भिक्खु नायक अथवा अनायक, उपासक अथवा अनुपासक किसी भी प्रकारके अयोग्य व्यक्तिको दीक्षा देता है अथवा ऐसे व्यक्तिको दीक्षा देनेवालेकी सहायता करता है। अयोग्य व्यक्ति को उठाता है अथवा उठानेवालेकी सहायता करता है। अयोग्य व्यक्तिसे अपनी सेवा कराता है अथवा सेवा करने वालेको सहायता करता है। ऐसे भिक्खुको अनुद्घातिम चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इस प्रकार शास्त्रमें अनेक स्थानों पर अयोग्य-दीक्षाका निषेध किया गया है।

ऊपर लिखे प्रमाणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अयोग्य व्यक्ति को दीक्षा या संन्यास देनेकी किसी भी धर्ममें आज्ञा नहीं है। संसारका कोई भी धर्म इस बातको नहीं सह सकता कि एक अयोग्य बालक उनका धर्मगुरु बन कर धार्मिक स्तरको नीचे गिरावे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समय धर्म और बालदीक्षा

शास्त्रीय दृष्टिसे दीक्षा विषय पर संक्षिप्त विचार करनेके बाद अब हमें समय धर्म या युगधर्मकी अपेक्षा इस विषय पर विचार करना है। समयकी मांग दूसरी सभी मांगोंसे प्रबल होती है। शास्त्र और परम्पराकी मर्यादाएं उसके सामने नहीं टिक सकती। जो लोग समयको पहिचान कर तदनुसार चलते हैं, वे प्रगतिके पथ पर आगे बढ़ जाते हैं। जो उसका सामना करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। अवतारी पुरुष, वीतराग तथा तीर्थङ्कर भी समयधर्मका उल्लंघन नहीं कर सके। शास्त्र तथा साधारण साधुओंकी तो बात ही क्या है। बुद्धिमत्ता इसीमें है कि उचित परिवर्तन करते हुए अपनेको तत्कालीन परिस्थितिके योग्य बनाया जाय।

हमारा साधु-समाज हजारों वर्ष पहले बने हुए शास्त्रोंको प्रमाण मान कर उनके अनुसार चलनेकी डींगें भले ही हांकता हो, किन्तु व्यवहारमें वह बहुत गिर गया है।

१—पुराने साधु गाँवके बाहर किसी उद्यान, वाटिका या सूने घरमें उतरते थे। एक बार भिक्षाके सिवाय गाँवमें आनेका उन्हें कोई प्रयोजन न था। गृहस्थोंके साथ उनका सम्पर्क बहुत थोड़ा रहता था। आजकल साधु गाँवके बीचमें उतरते हैं। बड़ी-बड़ी हवेलियोंमें ठहरते हैं। उनके पास श्रावक तथा श्राविकाओंका जमघट दिनरात लगा रहता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

२—वर्त्तमान साधु चमकीले तथा भड़कदार कपड़े पहिनते हैं। सरदीके लिए उनके पास सौ-सौ और डेढ़-डेढ़ सौ रुपये कीमतवाले ऊनी व रेशमी कपड़े होते हैं और गरमीमें ऐसी बारीक मलमल पहिनते हैं जिसमें शरीरका प्रत्येक अंग दिखाई दे।

३—पुराने समयके साधु केवल एक बार रूखा सूखा भोजन करते थे। आजकल घी, दूध, मलाई तथा शरीरको पुष्ट करनेके लिये चन्द्रोदय, मकरध्वज, मौक्तिक भस्म आदिका प्रतिदिन सेवन करते हैं। प्रत्येक ऋतुके फल, (अचित किये हुए[1]) मेवे तथा मिठाइयां खाते हैं। सैकड़ों डाकर और वैद्योंकी आजीविकाएं इन्हीं साधुओंके सिर पर चलती हैं।

एक तरफ जिह्वा तथा दूसरी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये शास्त्र विहित मर्यादाको ताकमें रख देना, दूसरी ओर बालक और अयोग्य व्यक्तियोंको भरती करते जाना, साधु समाजके महान् पतनकी सूचना देता है।

राष्ट्र, समाज, धर्म तथा व्यक्ति सभीके लिये बाल-दीक्षा किस प्रकार हानिकारक बनी हुई है, हम उसे संक्षेपमें बता देना चाहते हैं।

---

१ इस अचित्त करनेका ढंग भी बड़ा विचित्र है। हल्केसे गर्म पानीमें जरासा डुबाकर निकाल लेना जिसमें स्वाद न बिगड़े अचित्त होना कहलाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

राष्ट्रीय दृष्टि

(१) भारतवर्षमें इस समय साधु, संन्यासी या फ़क़ीरके नाम से पुकारे जानेवाले व्यक्तियोंकी संख्या ७० लाखसे अधिक है। भारत सरीखे दरिद्र देशमें इतनी बड़ी संख्या मेहनत मज़दूरी बिना किए केवल दूसरोंके टुकड़ों पर पलती है। इस संख्याकी वृद्धिको रोकनेके लिये यह आवश्यक है कि अयोग्य व्यक्तियोंकी भरती अब और न की जाय।

(२) महावीर' बुद्ध, शंकर, रामानुज, दयानन्द, विवेकानन्द आदि महापुरुषोंने अकेले होनेपर भी भारतवर्षको जगा दिया। आज उनकी गद्दी पर बैठनेवाले ७० लाख होनेपर भी भारतवर्ष दिन प्रति दिन गिर रहा है। राष्ट्रके उत्थानमें ये बहुत बड़े बाधक बने हुए हैं।

(३) बैठे ठाले पेट भर जानेके कारण ऐसे साधु देशमें आलस्य और अकर्मण्यता फैलाते हैं। दिन रात बड़ी मेहनत करने पर भी जो लोग भरपेट भोजन नहीं प्राप्त कर सकते, वे जब मुफ्तके माल-मलीदे खाकर तोंद पर हाथ फेरते हुए साधुओंको देखते हैं, तो उनका जी ललचा जाता है। इस प्रकार देशकी उत्पादक शक्ति कम होती जाती है। ये ही साधु यदि खेती या मेहनत मज़दूरी करें तो देश की समृद्धिको बढ़ा सकते हैं।

(४) बालक राष्ट्रकी बहुत बड़ी सम्पत्ति होते हैं। उनसे राष्ट्र-को बड़ी बड़ी आशाएं होती हैं। उनके विकासको रोककर जीवन भरके लिए अकर्मण्य बना देना राष्ट्रका बहुत बड़ा नुकक्सान है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सामाजिक दृष्टि

(१) प्रायः ऐसे साधु हिन्दूसमाजकी अन्ध श्रद्धा पर पलते हैं। भोली बहिनें तथा भाई उनकी पूजा करते हैं। वास्तविकताका निर्णय बिना किए वे साधुका वेष पहिने हुए प्रत्येक व्यक्तिपर विश्वास करने लगते हैं। इस विश्वाससे लाभ उठाकर साधु वेषधारी गुण्डे औरतों का व्यापार करते हैं। हिन्दू समाजकी महिलाएं भगाई जाती हैं और उन्हें इधर उधर बेचा जाता है।

(२) बड़े बड़े तीर्थस्थानोंको ऐसे साधुओंने व्यभिचार और दुराचारका घर बना रखा है।

(३) उनके चंगुलमें फँसनेके बाद बहुतसे बालक तथा बालिकाओंका जीवन बरबाद हो जाता है।

(४) हिन्दूसमाजका नैतिक जीवन ऐसे साधु खोखला बना रहे हैं।

(५) गन्दी गन्दी बीमारियोंको फैलानेके लिये ऐसे भिखमंगे कीटाणुओंका काम करते हैं।

(६) हिन्दूसमाजकी दरिद्रताका ये प्रधान कारण बने हुए हैं।

धार्मिक दृष्टि

(१) वेद, गीता, रामायण और महाभारतका आदर्श रखनेवाला हिन्दूधर्म आज केवल ढोंग और ढकोसला रह गया है। इसका कारण केवल ढोंगी साधु हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(२) तीर्थ और मन्दिर ऐसे साधुओंके कारण अपवित्र तथा भय एवं ठगीके स्थान बने हुए हैं।

(३) स्त्री तथा भोले प्राणियोंको यह उपदेश दिया जाता है कि केवल साधुओंकी सेवा करनेमें धर्म है, इससे साधुओंके साथ स्त्रियों-का सम्पर्क बढ़ जाता है और साधु तथा समाज दोनों पतित होते हैं।

वैयक्तिक दृष्टि

साधु बनने वाले बालक या बालिकाकी दृष्टिसे देखा जाय तो दीक्षासे उसका भी महान् अहित होता है।

(१) बालक मुनिधर्मकी कठोरताओंको अपनी इच्छापूर्वक सहनेके लिये कभी तैयार नहीं होता। ऐसी दशामें साधु बननेके लिये या तो उसे बाध्य किया जाता है या मीठे-मीठे भोजन और पूजा सत्कार आदिका प्रलोभन दिया जाता है। दोनों दशाओंमें बालकका अहित ही है।

(२) साधुका वेष पहिननेके बाद बालकका विकास एकदम रुक जाता है। विशेषतया जैन साधुओंमें इतने बन्धन हैं कि साधु बननेके बाद पढ़ सकना अत्यन्त कठिन है। यह प्रयोग करके देखा गया है कि समान अवस्था तथा बुद्धि वाले दो बालकोंमें से एक साधु हो जाता है और दूसरा गृहस्थ रहकर विद्याध्ययन करता है तो साधु बननेवालेके लिये समाज १५०) रु० मासिक खर्च करता है और गृहस्थके लिए १५) रु० मासिक। कुछ दिनोंमें गृहस्थ रहने वाला अच्छा विद्वान बन जाता है और साधु योंही रह जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(३) हिन्दू तथा जैन साधुको दुबारा गृहस्थ बननेका अधिकार नहीं होता। बाल्यावस्थामें दीक्षा लेनेवाला व्यक्ति युवा होनेपर यदि अपनेको संयममें न रख सके तो उसके लिए कोई मार्ग नहीं है। यदि वह गृहस्थ बन जाता है तो घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है वह जाति बाहर समझा जाता है। उसका कोई विवाह नहीं करता। पैतृक सम्पत्ति पर भी उसका अधिकार नहीं होता।

(४) ऐसी दशामें बहुतसे साधु उसी अवस्थामें रहते हुए दुराचार फैलाते हैं। आत्मपतनके साथ-साथ समाजको भी पतनके गड्ढेमें गिराते हैं।

वर्तमान परिस्थिति तथा उपाय

बालदीक्षाके इस प्रकार हानिप्रद होनेपर भी बीकानेर राज्यमें धर्मके नामपर ऐसे सम्प्रदाय विद्यमान हैं जिनमें लगभग ५० बालक और बालिकाओंको प्रति वर्ष मूंड लिया जाता है और उन्हें जन्म-सुलभ अधिकारोंसे वंचित कर दिया जाता है।

पुराने समयमें संघ और पंचायतोंमें इतना बल होता था कि वे किसी भी अयोग्य कार्यको रोक सकते थे। किन्तु आजकल वैयक्तिक स्वतन्त्रताके साथ-साथ संघ-शक्ति और उसका संगठन शिथिल पड़ गए हैं। संघके नियमोंकी खुली अवहेलना की जाती है।

कई संघोंका संचालन भी ऐसे पुरुषोंके हाथमें है जो अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते। रूढ़ि, स्वार्थ तथा अंधपरम्परा आदि कारणोंसे वे देखते हुए भी आँखें बन्द कर लेते हैं।

ऐसी दशामें बालदीक्षाकी हानिकारक प्रथाको रोकनेका एक ही उपाय है कि उसे कानून द्वारा बन्द करवा दिया जाय।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कानून विरोधी शंकाएं और उनके उत्तर

शंकाएँ

कुछ लोगोंकी शंका है कि—(क) धार्मिक व्यवस्था करनेका कार्य संघका है। सरकारको इसमें हस्तक्षेप न करना चाहिए।

(ख) व्यक्तिकी अयोग्यता उमर पर निर्भर नहीं है। छोटा बालक भी दीक्षाके लिए योग्य हो सकता है और बड़ा आदमी भी अयोग्य हो सकता है। इसलिए सरकारका ध्येय अयोग्य व्यक्तियों की दीक्षा बन्द करनेका होना चाहिए बालदीक्षा बन्द करनेका नहीं।

(ग) जिस सम्प्रदायमें पहलेसे ऐसे नियम विद्यमान हों जिनसे अयोग्य व्यक्तिको दीक्षा लेने या देनेका अधिकार न रहे, उस सम्प्रदाय पर सरकारी नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं है।

(घ) कानून बनानेसे साधु संस्थाको धक्का पहुंचेगा।

(ङ) बाल्यावस्थामें विरक्त व्यक्तिके लिए आत्मकल्याणका मार्ग रुक जायगा।

उत्तर

(क) यह बात ठीक है कि धार्मिक व्यवस्था करनेका कार्य संघ का है। यदि संघ अपने सम्प्रदायमें धार्मिक व्यवस्था ठीक ठीक करे तो सरकारको हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है—क्या संघ व्यवस्था ठीक ठीक चल रही है? वास्तवमें देखा जाय तो आजकल संघकी व्यवस्था तभी तक चलती है जब

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तक वह साधुओंकी मुट्ठीमें है। अपने स्वार्थमें थोड़ी-सी भी बाधा पड़नेपर भी साधु संघके नियमोंको तोड़के लिए तैयार हो जाते हैं। चेलेकी प्राप्तिसे साधुको उतना ही हर्ष होता है जितना एक गृहस्थ को पुत्रकी प्राप्तिसे। ऐसी दशामें चेलेको अयोग्य ठहराने पर साधु अपने स्वार्थमें बाधा पड़ती देखकर संघ व्यवस्था ठुकरा देते हैं। इसके लिये अनेक उदाहरण पेश किए जा सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि पुराने जमे हुए कुसंस्कार या साधुओंकी अन्धभक्तिके कारण जहाँ संघ स्वयं अयोग्य दीक्षाके लिये अनुमति दे देता है। वहाँ बालकके हितकी रक्षा करना सरकारका कर्त्तव्य है।

ऐसा एक भी संम्प्रदाय नहीं है जिसमें अयोग्य साधु विद्यमान न हों, फिर भी संघने कभी आपत्ति नहीं उठाई। यह बात तो साधु और संघ सभी मानते हैं कि साधु बननेके लिये महान् त्याग तथा वैराग्यकी आवश्यकता है और ऐसा त्याग बिरलोंमें ही पाया जाता है। किन्तु ऐसा उदाहरण एक भी मिलना कठिन है जहाँ त्याग या वैराग्यकी कमीके कारण किसी दीक्षार्थीको अयोग्य बताया गया हो और दीक्षा न दी गई हो। जिस बालकको आज मिठाइयाँ खाने और रंग-विरंगे कपड़े पहिननेकी तथा सिनेमा देखनेका शौक है, जो छोटी छोटी बातोंके लिये झगड़ता है, रोता है, जिसकी मानसिक तथा शारीरिक दशा बिल्कुल गिरी हुई है, वही दूसरे दिन साधु बना लिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि उसमें

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

साधुताके लिये आवश्यक त्याग और वैराग्य आ गए। इसे सत्यका अपलाप करनेके सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।

उल्टे यह बात तो आवश्य देखी गई है कि पढ़ लिख जानेपर बहुतसे व्यक्तियोंने दीक्षा छोड़ दी है और आज वे देश, समाज अथवा साहित्यके क्षेत्रमें आदर्श कार्य कर रहे हैं।

इन सब बातोंके आधारपर कहा जा सकता है कि संघमें न तो अब वह बल है जिसके आधारपर वह साधुओंपर नियन्त्रण कर सके और न उतनी योग्यता ही है। ऐसी दशामें सरकारी कानून ही समर्थ बन सकता है।

(ख) यह बात ठीक है कि बड़े होने पर भी बहुतसे व्यक्तियों में दीक्षाकी योग्यता नहीं आती; किन्तु बाल्यवस्थामें इतनी योग्यता का आजाना भी बुद्धि गम्य नहीं है। सरकारी कानून इस बातको मानता है कि नाबालिग यदि कोई शर्त्त या प्रतिज्ञा करता है तो वह उसके लिये बाध्य नहीं होता। उसकी शर्त्तको कानून नहीं मानता। साधु बनते समय दीक्षार्थीको बड़ी कड़ी प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती हैं वह आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा करता है। अपनी सारी सम्पत्तिको छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा करता है। वही बालक यदि किसीसे सौ रुपये उधार ले आता है तो जो संरक्षक यह कहकर टाल देता है कि बालककी बुद्धि अपरिपक्व होनेके कारण इस कर्जके हम जिम्मेवार नहीं हैं, वही संरक्षक सारी सम्पत्ति त्यागने और आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञाके लिये उसे परिपक्व बुद्धिवाला तथा सर्वथा योग्य मान लेता है—यह किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं कहा जा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकता। जिस व्यक्तिकी प्रतिज्ञाओंपर गुरु तथा संघको पूरा विश्वास नहीं हो सकता, जैसा कि बालकके विषयमें स्वाभाविक है, उसे दीक्षा देना कानून तथा शास्त्र दोनोंसे विरुद्ध है।

पुरानी कथाओंमें आए हुए दो-चार महापुरुषोंका उदाहरण देकर साधारण नियम बनान उचित नहीं कहा जा सकता।

बालिग़ होनेपर व्यक्ति अपने हितोके लिये स्वयं ज़िम्मेवार होता है। नाबालिग़ अवस्थामें जिस व्यक्तिके हित यदि किसी सामाजिक अथवा धार्मिक प्रथा द्वारा कुचले जाते हों तो उनकी रक्षा करना राज्यका कर्तव्य है। इसलिये नाबालिगोंके हितोंकी रक्षाके लिये कानून अवश्य बनना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि योग्यता और अयोग्यताका निर्णय सर्व-साधारण द्वारा नहीं हो सकता। उस हालतमें कानून बन जाने पर भी गड़बड़ पड़ सकती है। जिस प्रकार शास्त्रोंमें योग्यताका निर्णय होने पर भी उसकी परवाह नहीं की जाती, उसी प्रकार कानून बन जाने पर भी योग्यता की आड़में वही बात चल सकती है। उम्रका निश्चय हो जाने पर अयोग्य व्यक्तियोंकी एक श्रेणीका तो बचाव हो ही जाएगा।

(ग) नियमोंका पहलेसे होना—किसी भी संप्रदायमें नाबालिगको दीक्षा देनेकी मनाही नहीं है। यदि मान लिया जाय कि किसी सम्प्रदायमें इस प्रकारकी मनाही है तो कानून बननेपर उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती। अयोग्य व्यक्तिको दीक्षा देनेकी मनाही शास्त्रोंमें अवश्य है किन्तु उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। शास्त्रोंकी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मर्यादाका पालन वहीं तक किया जाता है जहाँतक अपने स्वार्थोंमें कोई खलल नहीं पड़ता। ऐसी दशामें शास्त्रीय नियम रहनेपर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनका पालन अवश्य होता है। पालन न होनेपर नियमोंका होना कोई महत्व नहीं रखता।

(घ) साधु संस्थाको धक्का—कानूनका उद्देश्य यह नहीं है कि इससे साधुसंस्थाको धक्का पहुंचे। इसके विपरीत कानून बनने पर साधुसंस्थामें सुधार होगा। साधु-संस्थाकी उन्नति साधुओंकी बड़ी संख्या पर निर्भर नहीं है किन्तु उनके पवित्र आचरण तथा त्याग पर निर्भर करती है। आज साधु वेषधारियोंकी संख्या सत्तर लाखसे अधिक होने पर भी साधु संस्था गिरी हुई है। किन्तु पवित्र आचरण वाले इने गिने साधु होने पर भी साधु संस्थाको उन्नत कहा जायगा।

(ङ) आत्मविकासका रुकना—ऐसा एक भी धर्म नहीं है जिसमें यह कहा गया हो कि साधुके कपड़े बिना पहने आत्मविकास नहीं हो सकता। जैन शास्त्रोंमें स्पष्ट लिखा गया है कि गृहस्थके वेषमें रहते हुए भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्तिमें उत्कट वैराग्य है वह गृहस्थ रहता हुआ भी धर्मकी उत्कृष्ट आराधना कर सकता है। कानून तो केवल यही कहता है कि बालकको साधुके कपड़े पहिनाकर उसे जीवन भरके लिये प्रतिज्ञाबद्ध न किया जाय। यदि वह गृहस्थ रहकर विवाह न करे, साधुके समान दिनचर्या बना ले तो उसे कोई नहीं रोकता। बाल्यावस्थामें ही जीवन भरके लिये प्रतिज्ञा करनेकी क्षमता उसमें नहीं होती। यदि एक बालक वैराग्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

होने पर अपना जीवन त्यागवृत्तिसे बिताता है और योग्य अवस्था होने पर दीक्षा ले लेता है तो उसे कोई नहीं रोकता। ऐसा साधु तो आदर्श साधु बनता है। प्रायः ऐसा होता है कि क्षणिक जोशमें आकर बालक साधु बन जाते हैं और बड़े होने पर पछताते हैं। क्षणिक जोशमें आकर बालक जीवन भरके लिये किसी प्रतिज्ञामें न फँसें, यही कानूनकी मंशा है।

विरोधी पक्षकी दलीलों पर विचार

पूर्व पक्षकी दलीलें

धर्मशास्त्र तथा धर्मकी इस प्रकार मनाही होने पर भी बहुतसे साधु-वेषधारी चेलोंके लोभसे छोटे-छोटे बच्चोंको मूंड लेते हैं। वे दलीलें देते हैं—

(क) जैन शास्त्रोंमें आठ वर्षसे कुछ अधिक उम्र वाले बालकको दीक्षा देनेकी अनुमति है। इस लिये ६-१० वर्षके बालकको दीक्षा देनेमें किसी प्रकारका शास्त्रविरोध नहीं होता।

(ख) भगवान् महावीरने स्वयं अतिमुक्त कुमारको बाल्यावस्था में दीक्षा दी थी। इसी प्रकार वज्रस्वामी आदि कई दूसरे मुनि भी ऐसे हुए हैं जिन्होंने बचपनमें दीक्षा लेकर धर्मका उद्धार किया है।

(ग) धर्मके असली संस्कार बाल्यावस्थामें ही बैठाये जा सकते हैं। सांसारिक वासनाओंसे चित्तके दूषित होनेपर वह निर्मलता नहीं आ सकती।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(घ) बाल दीक्षाका जहाँ निषेध आया है, वहाँ उसका अर्थ आठ वर्ष तकके बालकसे है।

विरोधी दलीलोंका खण्डन

(क) यह बात ठीक है कि जैन शास्त्रोंमें दीक्षाके लिये कमसे कम उम्र आठ वर्ष बताई गई है किन्तु केवल उतनी उम्र होनेसे कोई दीक्षाका अधिकारी नहीं बन जाता। दीक्षार्थीमें दूसरे गुणोंका होना भी आवश्यक है। सौ में से एक भी बालक ऐसा मिलना कठिन है जो दीक्षार्थीके योग्य गुणों वाला हो तथा जिसमें साधुके कठोर व्रत को पालन करनेका सामर्थ्य हो। ऐसी दशामें अयोग्य व्यक्तिको दीक्षा देनेसे शास्त्र विरोध होता है।

(ख) अतिमुक्त कुमार तथा वज्रस्वामी जन्मसे ही विशिष्ट शक्ति सम्पन्न थे। उन्हें दीक्षा देनेवाले भी अतिशय ज्ञान सम्पन्न थे। उनकी तुलना साधारण बालकोंसे नहीं की जा सकती। अतिमुक्त कुमार उसी भवमें मोक्ष गये। वज्रस्वामी बाल्यावस्थामें ही चौदह पूर्वके ज्ञाता हो गये। क्या आजकल दीक्षित किये जानेवाले बालकोंमें एक भी ऐसा हुआ है? उनके उदाहरणसे तो यही स्पष्ट होता है कि साधारण बालकको दीक्षा न देनी चाहिये।

दूसरी बात यह है कि भगवान् महावीरको हुए लगभग अढ़ाई हजार वर्ष हो गए। इतने लम्बे समयमें केवल दो चार विशिष्ट शक्ति सम्पन्न बालकोंको ही दीक्षा दी गई। इस बातको उदाहरण बना कर प्रतिवर्ष बीसों बालक तथा बालिकाओंको दीक्षा देना उचित नहीं कहा जा सकता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आगमविहारियोंके लिये यह नियम नहीं है कि वे परम्पराका पालन करें। परिस्थिति देखकर वे जैसा उचित समझें, वैसा कर सकते हैं। उपरोक्त दोनों दीक्षाएं देनेवाले आगमविहारी थे। उनका उदाहरण आजकलके समयमें उपस्थित नहीं किया जा सकता।

(ग) यह बात ठीक है कि धार्मिक संस्कार बचपनमें डाले जा सकते हैं किन्तु ऐसे संस्कार डालनेके लिये साधु बनना आवश्यक नहीं है। गृहस्थ रहकर भी ब्रह्मचर्य आदिका पालन किया जा सकता है और वासनाओंतथा अन्य दोषोंसे दूर रहा जा सकता है।

साधु अवस्था धार्मिक संस्कारोंका प्रारम्भ करनेके लिये नहीं होती। संस्कार पुष्ट होने पर धर्मकी उच्चतम आराधनाके लिये मुनिव्रत लिया जाता है। इसके लिये तो यही ठीक होता है कि बालककी भावनाओंको धीरे-धीरे पुष्ट होने दिया जाय और अवस्था परिपक्व होने पर वह चाहे तो संन्यास (दीक्षा) अंगीकार कर ले।

(घ) यह बात ठीक है कि जैन शास्त्रोंमें बाल शब्दसे आठ वर्ष तकका ही अर्थ लिया गया है किन्तु उन्हींमें तथा दूसरे ग्रन्थोंमें भी सोलह वर्ष तक बालक कहा गया है।

स्थानांग सूत्रकी वृत्तिमें अभयदेव सूरिने लिखा है—

"आषोडशाद् भवेद् बालः"

इसी प्रकार आचारांग सूत्रकी टीकामें भी आया है—

आषोडशाद्भवेद्बालो, यावत्क्षीरान्नयाचकः।

आ० १ श्रु० २ अ० १ उ०

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सुश्रुतमें आया है—

वयस्तु त्रिविधं बाल्यं, मध्यमं वार्द्धकं तथा ।
ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ।।

स्मृति तथा भरत नाट्य शास्त्रमें आया है—

आषोडशाद्भवेद्बालस्तरुणस्तत उच्यते ।

अमर कोषकी 'अमर विवेक' टीकामें भी यही बात है—

आषोडशाद्बालः ।।

इसलिये आठ वर्ष तक ही बाल कहना उचित नहीं है । मनुस्मृति अ० २ श्लोक १५३ में आया है—

अज्ञो भवति वै बालः ।

इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जब तक अज्ञ रहता है, अपने हिताहितको नहीं समझ सकता तब तक वह बाल है । यह सरकारी निर्णय हो चुका है कि बुद्धिका परिपाक १८ वर्ष पूर्व तक नहीं होता । इस दृष्टिसे देखा जाय तो अठारह वर्ष तककी अवस्थावालेको बाल ही समझना चाहिये ।

श्री० छोगमलजी चोपड़ाकी युक्तियों पर बिचार

सन् १९३० ई० में श्री जैनश्वेताम्बर तेरापंथी सभाके तत्कालीन मंत्री श्री० छोगमलजी चोपड़ाकी तरफसे 'बीकानेरमें नाबालिग चेलाचेली निषेधक :प्रस्ताव पर विवेचन' नामकी दो पुस्तिकाएँ (खण्ड १ और २) प्रकाशित हुई थीं । उनमें उन्होंने जिन युक्तियों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के आधार पर 'बाल दीक्षा प्रतिबन्धक कानून' का विरोध किया है वे युक्तियाँ और उनके उत्तर नीचे दिये जाते हैं—

१—सन् १६२६ में सेठ रामरतनदासजी बागड़ीने बीकानेर गवर्नमेन्टसे यह प्रार्थना की थी कि रियासतमें नाबालिग लड़के लड़कियोंको चेला चेली बनानेकी प्रथा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिससे बड़ी भारी हानि होती है। इसके लिये गवर्नमेन्टकी तरफ से उचित कार्रवाई की जानी चाहिये। इसपर श्री चोपड़ाजीने सन् १६२१ की मर्दुमशुमारीके आंकड़े पेश करके लिखा है कि पौने तीन लाखकी नाबालिग प्रजामें केवल ३५ व्यक्तियोंने दीक्षा ली है। इसलिये यह कहना गलत है कि नाबालिगोंको चेलाचेली बनानेकी प्रथा बढ़ रही है।

उत्तर—इसके उत्तरमें हम बीकानेर स्टेटकी कुल जैन जनताकी संख्याके अनुपातमें ७४ प्रतिशत कहे जाने वाले 'श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ' नामक सम्प्रदाय (सौभाग्यसे श्री० चोपड़ाजी भी उसी सम्प्रदाय भुक्त हैं) के आंकड़े उदाहरण स्वरूप पेश करते हैं। मि० भादवा सुदी १३ सं० २००० को तेरह व्यक्तियोंने दीक्षा ली उनमेंसे एक या दो को छोड़कर सभी नाबालिग थे। इसी प्रकार मि० कार्तिक सुदी ६ सं० २००० को पन्द्रह व्यक्तियोंने दीक्षा ली उनमेंसे १ बालिग और १४ नाबालिग थे *। यदि पिछले ७ वर्षों (सं०

---

* देखो, श्री जैन श्वे० तेरापंथी सभा, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित मासिक 'विवरण पत्रिका' सितम्बर और अक्टूबर सन् १९४३ के अंक।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१९९३ से ९९ तक) के आंकड़े देखे जायँ तो पता चलेगा कि आचार्य श्री० तुलसीरामजीके तबतकके शासनकालमें दीक्षा लेनेवाले ६४ 'संत मुनिराजों' में से ४८ कुँवारे ‡ (नाबालिग) थे जोकि प्रतिशत ७५ होते हैं ! किन्तु इनसे पिछले ८ आचार्यों के शासनकाल में—दीक्षा लेकर 'गण बाहर' हो जानेवालेको बाद देकर बाकी रहे हुओंमेंसे भी—क्रमशः ६९, ४६, ५६, ६०, ४८, ३०, २२ और २७ प्रतिशत थे †। अब पाठक ही देखें कि यह प्रथा बढ़ रही है या नहीं ?

२—जब मा बाप या संरक्षक पर ही नाबालिगके सांसारिक कामोंका भार रहता है और कानूनन वे नाबालिग के शरीर व संपत्ति के रक्षक हैं, तो यह समझमें नहीं आता कि धार्मिक हितचिन्तनका भार उनपर से कैसे हटाया जा सकता है ?

---

‡ मारवाड़ और थलीमें आम रिवाज है कि प्रायः १५-१६ वर्ष आयु के पूर्व ही विवाह हो जाता है इसलिये कुँवारोंको नाबालिग ही समझना चाहिये। हाँ, विवाहित भी नाबालिग हो सकता है अतः लिखित संख्यामें वृद्धिके अतिरिक्त कमीकी संभावना नहीं।

† देखो, 'श्री जैन श्वे० तेरापंथी सम्प्रदायके वर्तमान संत मुनिराज एवं महासतियाँजी महाराजकी नामावली' नामक पुस्तिका। उक्त सभा द्वारा प्रकाशित।

नोट—दूसरी सम्प्रदायोंमें भी बाल दीक्षा प्रचलित है किन्तु व्यवस्थित आंकड़े न मिलनेसे नहीं दिये जा सके।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उत्तर—यह बात ठीक है कि बालकके हितोंकी रक्षाका उत्तर-दायित्व सबसे अधिक माता-पिता पर है और वे ही इस विषयमें सबसे अधिक विश्वास योग्य हो सकते हैं। किन्तु जहाँ माता पिता अज्ञानता या वैयक्तिक स्वार्थके कारण बालकका हित बिगाड़नेके लिए तयार हो जाते हैं वहां सरकारके लिए दखल देना आवश्यक हो जाता है। बाल विवाह विरोधी कानूनका बनाया जाना इस बातको स्पष्ट कर देता है। जब यह समझा गया कि छोटे-छोटे बच्चोंका विवाह करके माता पिता बालकोंका भविष्य बिगाड़ देते हैं, तो उन अज्ञान माता पिताओंके उत्तरदायित्वको ठुकराकर कानून बनाना पड़ा। उन्नत राष्ट्रोंमें आवश्यक शिक्षा (Compulsory Education) तथा दूसरे ऐसे बहुतसे कानून हैं जिनमें बालकों का भविष्य सरकारने अपने हाथमें ले रखा है। रुपया लेकर अपनी कन्याका विवाह वृद्धके साथ करने वाले माता पिताओंकी कमी नहीं है। क्या यह कहा जा सकता है कि ऐसे माता पिताके हाथमें बालकका भविष्य पूर्णतया सौंप देना चाहिए?

बहुतसे संरक्षक कन्याके विवाहमें होनेवाले खर्चके डरसे उसे दीक्षा दिला देते हैं। बड़ा भाई संपत्तिमें बँटवारेके डरसे अपने छोटे भाईको दीक्षा दिलवा देता है। रुपये देकर चेला खरीदनेके प्रसंग भी बहुत देखनेमें आते हैं। इन सब बातोंके होते हुए संर-क्षककी जिम्मेवारी पर विश्वास करना किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं कहा जा सकता।

(३) कानूनमें नाबालिगको धर्मपरिवर्तन तथा धार्मिक कार्यों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के लिए समर्थ माना है। दीक्षा एक धार्मिक कार्य है। इसके लिए प्रतिबन्ध लगाना धार्मिक कार्यों में स्वतन्त्रता देनेवाले कानूनका विरोध करना है।

उत्तर—धार्मिक कार्योंमें स्वतन्त्रता देनेवाले कानूनकी यह मंशा नहीं है कि बालक ऐसे कार्यमें भी स्वतन्त्र है जिसमें वह ठगा जाय या अपनी सम्पत्तिसे हाथ धो बैठे। दीक्षा प्रतिबन्धक कानून दीक्षा के सिवाय बालकके और किसी धार्मिक कायमें बाधा नहीं डालता। केवल उसे उस नुक्सानसे बचाना चाहता है जिसे दीक्षा लेनेपर उसे भुगतना पड़ता है। इसलिये धार्मिक स्वतन्त्रता और बाल-दीक्षा-प्रतिबन्धक कानूनकी मंशाओंमें कोई विरोध नहीं है।

(४) यह सिद्धान्त जनताको धार्मिक स्वतन्त्रताके सिद्धान्त पर आघात पहुंचाता है, जिस सिद्धान्तको संसारकी समस्त सभ्य गवर्नमेण्टोंने माना है। अपने-अपने धर्मके अन्दर रह कर धार्मिक उन्नति कैसे की जा सकती है. यह भिन्न-भिन्न मतावलम्बी ही जान सकते हैं। यदि बीकानेर असेम्बली धार्मिक क्रियाओं एवं मतोंपर रुकावट डालना चाहेगी तो वह अपने कार्यक्षेत्रसे बाहर चली जायगी और उसका हस्तक्षेप अनुचित होगा।

उत्तर—जिससे आध्यात्मिक विकास हो उसे धर्म कहते हैं। आध्यात्मिक विकासके मार्ग अनेक हो सकते हैं। इसलिए राजनीतिका यह पहलू रहा है कि किसी व्यक्तिको इस बातके लिए बाध्य न किया जाय कि वह अमुक मार्गका ही अवलम्बन करे। जो प्रथा ऐसी है, जिससे विकासके स्थान पर पतन हो, आध्यात्मिक संस्था

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का स्तर गिर जाय उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। चाहे वह धर्मके नामपर प्रचलित हो या जातीय रिवाजके नामपर। ऐसी प्रथाको रोकना धार्मिक स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप नहीं है। यह तो धार्मिक पवित्रताकी रक्षा करना है। धार्मिक पवित्रताकी रक्षाके लिए तथा समाज एवं देशको हानिसे बचानेके लिए बुरी प्रथाको रोकना धारा सभाका कर्त्तव्य होता है। यह उसके क्षेत्रसे बाहर नहीं है। बंगालमें सती प्रथाकी रोक और अन्यत्र बाल-वृद्ध-विवाह-निषेधक कानून इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

(५) यह प्रस्ताव संसारकी उन्नतिमें बड़ा भारी बाधक होगा। समस्त धर्मोंके सर्वश्रेष्ठ गुरु वे ही हो गए हैं जिन्होंने इस अनित्य एवं असार संसारको अपने बाल्यकालमें ही त्याग दिया था न कि वृद्धावस्थामें। जगद्विख्यात धर्मगुरु उन्हीं लोगोंमेंसे हुए हैं जिन्होंने बाल्यकालमें संन्यास ग्रहण किया था क्योंकि उस समय मस्तिष्क बड़ा ही स्वच्छ, सरल, प्रभाव जमाने योग्य और समस्त सांसारिक जीवनकी कलुषतासे स्वतन्त्र रहता है। धर्मको सबसे अधिक आशा उन्हींसे रहती है जो इस जीवनके पापों एवं कुकर्मोंसे दग्ध नहीं किए गए हैं। सांसारिक उन्नतिके लिये यदि बाल्यकालसे सांसारिक अर्थकरी विद्याध्ययन आवश्यक है तो पारलौकिक उन्नतिके लिए पवित्र और त्यागी आत्मा यदि बाल्यकालमें ही लालायित हो तो उसमें रुकावट डालना अन्याय है।

उत्तर—यह कहना बिलकुल गलत है कि सर्वश्रेष्ठ धर्मगुरुओंने बाल्यकालमें ही दीक्षा ली थी। जैनियोंके चौबीस तीर्थंकरोंमेंसे एकने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भी बाल्यकालमें दीक्षा नहीं ली। भगवान् महावीरने २८ वर्षमें दीक्षा ली थी। भगवान् बुद्धने पुत्रोत्पत्ति के बाद दीक्षा ली। ग्यारह गणधरोंमेंसे एक भी ऐसा नहीं था जिसने बाल्यवस्थामें दीक्षा ली हो। जैनियोंमें त्रेसठ शलाका पुरुष माने जाते हैं। उनमेंसे एक भी बाल्यावस्थामें दीक्षित नहीं हुआ। सोलह सतियोंमें एक भी बालिका न थी। स्वयंभव, भद्रबाहु, स्थूलभद्र, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्रसूरि आदि जितने प्रसिद्ध आचार्य तथा विद्वान् हुए हैं सभीने बड़ी उम्रमें दीक्षा ली थी। हेमचन्द्र या शंकराचार्य सरीखा एक आधा उदाहरण बाल्यावस्थामें साधु बननेका मिलता है किन्तु वह अपवाद के रूपमें गिना जाता है। संसारके धर्माचार्योंको लिया जाय तो बाल्यावस्था में दीक्षित होने वाले एक प्रतिशत भी न मिलेंगे।

जिसने सांसारिक भोगोंको देखा ही नहीं है, वह उनसे विरक्त नहीं हो सकता। सच्चा विरक्त तो वही होता है जो संसारमें फंसकर भोगोंसे तंग आ गया है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चा साधु हो सकता है। जिसने भोगोंको जाना ही नहीं उसके लिये भोग प्राप्त होने पर पतनकी पूर्ण संभावना रहती है। धर्मको सबसे अधिक आशा उनसे होती है जो इस जीवनके पापों एवं कुकर्मोंसे दग्ध होकर बाहर निकलना चाहते हैं।

यह बात ठीक है कि व्यावहारिक संस्कारोंकी तरह धार्मिक संस्कार भी बाल्यावस्थामें ही डाले जाने चाहिए। किन्तु दीक्षा ग्रहण करते समय संस्कारोंका प्रारम्भ नहीं होता। दीक्षाका अधिकारी तो वह होता है जिसके संस्कार दृढ़ हो चुके हैं। बाल दीक्षा प्रतिबन्धक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कानून इस बातको नहीं कहता कि बालकमें धार्मिक संस्कार ही न डाले जायें किन्तु यह कहता कि आजीवन बन्धनमें न डाला जाय। संस्कार तथा बुद्धि परिपक्व होनेपर वह अपनी इच्छासे संन्यास ग्रहण कर सकता है।

(६) माता पिता या उनके अभावमें नाबालिगका घनिष्ठ आत्मीय ही उसका स्वाभाविक आभिभावक (Natural guardian) हैं, यह बात कानून व प्रचलित रिवाज मंजूर करता है। पिता माता नबालिगकी भावी उन्नतिके लिये उसे चेला चेली बनाने लिए दे सकते हैं। राजशक्ति सिर्फ नबालिगकी संपत्तिकी सर्वोच्च अभिभावक है। याने जहाँ स्वाभाविक अभिभावक नाबालिगकी संपत्ति का रक्षण नहीं करते वहाँ राज शक्ति याने अदालतें नबालिगका अभिभावक बनती हैं। परन्तु नाबालिगके शरीरके अभिभावक माता पिता ही सर्वदा हैं। और उनकी ही आज्ञासे और नाबलिगकी तीव्र इच्छासे यदि चेला चेली बनाया जाय तो उसमें राजशक्तिको आपत्ति का कोई कारण नहीं हो सकता।

उत्तर—यह बात ठीक है कि माता पिता बालकके सर्वोच्च अभिभावक होते हैं किन्तु कानूनमें यह बात स्पष्ट है कि यदि माता पिता बालकके भरण पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षाका ध्यान न रखें तो वे भी संरक्षकत्वसे पृथक् किए जा सकते हैं, या कोर्ट उन्हें दण्ड दे सकता है।

बाल्यावस्थामें दीक्षित हो जानेपर बालकके निम्न लिखित हितों की हानि होती है—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(क) साधु बननेपर बालक अपने व्यावहारिक विकासके लिए शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकता।

(ख) वह अपनी संपत्तिका अधिकार खो बैठता है।

(ग) वह विवाह आदि करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता।

(घ) दीक्षा छोड़ देनेपर जातिसे बाहर तथा पतित समझा जाता है।

इन सब कारणोंसे यह स्पष्ट है कि दीक्षा दिलानेवाले संरक्षक बालकके हितोंकी रक्षा नहीं करते। ऐसी दशामें वे संरक्षक होनेके अयोग्य हैं।

माता पिता बालककी धार्मिक उन्नतिके लिये उसे धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं किन्तु उसे ऐसी जोखिममें नहीं डाल सकते जिससे वह अपने पैतृक अधिकारोंसे हाथ धो बैठे। इस लिये उन्हें चेला चेली बना देनेका संरक्षकको अधिकार नहीं है।

संपत्तिके संरक्षककी हैसियतसे देखा जाय तो राजशक्ति बालक को कोई भी ऐसा कार्य करनेसे रोक सकती है जिससे वह अपनी संपत्तिका अधिकार खो बैठे। दीक्षा एक ऐसा कार्य है जिसमें बालक अपनी संपत्तिका अधिकार खो देता है।

(७) Guardians &Wards Act (अभिभावक व नाबालिग का कानून) जो कि बीकानेरका Act No. I 1922 (१९२२ का कानून नं० १) है, खुलासा कहता है कि नाबालिग १८ बर्षसे कम

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उम्रवाले हैं। परन्तु दफे २ में यह भी खुलासा लिखा है कि यह नबालिगपन कोई भी श्री जी महाराजके प्रजाके धर्ममें या धार्मिक क्रिया और आचारमें बाधा नहीं देगा। जब इस कानून द्वारा हर एक नाबालिगको अपने धार्मिक भाव और धार्मिक क्रियामें पूर्ण स्वतन्त्रता दी गयी है तब नहीं समझमें आता कि असेम्बली इस कानूनके रहते हुए भी इस कानूनकी मंशाका बिलकुल रद्द करने वाले नए प्रस्ताव द्वारा कैसे नवीन कानून बनानेकी कोशिश करती है ?

उत्तर—नाबालिगको धार्मिक स्वतन्त्रता वहीं तक है जहाँ तक वह किसी जोखिम में नही पड़ता। हाइड्स रिपोर्ट जिल्द १ पृष्ट १११.हेमनाथ बोसके मामलेमें जस्टिस वेल्सके फैसलेका उदाहरण देते हुए चोपड़ाजी स्वयं लिखते हैं—

"इन सब मामलोंसे जाहिर है कि जहाँ नवालिग समझ बूझकर किसीका चेला बना हो या बनना चाहता हो तो भी पिता उसे वापिस अपने कब्जेमें ले सकता है और नबालिगकी इच्छा पिताके पास जानेकी न हो तब भी कोर्ट उसे पिताके हवाले कर देगी।"

चोपड़ाजी यह मानते हैं कि पिताकी आज्ञाके बिना बालक चेला नहीं बन सकता। यदि वे धार्मिक विषयमें उसे पूर्ण स्वतन्त्रता देते हैं तो फिर पिताकी आज्ञा भी किस लिये आवश्यक मानते हैं ? इससे यह स्पष्ट है कि बालकको धार्मिक स्वतन्त्रता वहीं तक जहाँतक वह अपने अधिकार तथा हितोंको नहीं खोता। पिता या

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संरक्षकको कहां तक अधिकार है इसका विवेचन "संरक्षकका उत्तर दायित्व" शीर्षकमें होगा।

(८) कानूनकी उत्पत्ति छह कारणोंसे होती है—

(क) रिवाज।

(ख) धर्म शास्त्रोंकी आज्ञा।

(ग) अदालतोंकी नजीरें।

(घ) वैज्ञानिक विचार।

(ङ) नीति।

(च) राज विधि।

कुछ कानून रिवाज पर प्रतिष्ठित है, कुछ धर्मशास्त्रोंके फरमान पर, कुछ नजीरों पर, कुछ साधारण नीति पर, कुछ कानून विषयक व्याख्याओं और वैज्ञानिक विचारों पर। इन सबका समन्वय करके वर्तमान कालमें विधि बद्ध कानून (Legislation) बनते हैं। जिन पाँचोंके प्रतिष्ठानसे विद्धि बद्ध कानूनोंके करनेमें सहारा मिलना है उनमेंसे किसी एककी भी उपेक्षा करनेसे लोकमत उस कानूनको स्वीकार नहीं करता और लोकमत विरुद्ध होनेसे राजशक्ति उस कानूनका प्रयोग करनेमें अग्रसर नहीं हो सकती।

उत्तर—यह बात ठीक है कि कानून बनाते समय उपरोक्त बातों पर बिचार कर लेना चाहिये किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इनमें से किसीका विरोध होनेपर कानून न बनाया जाय।

(क) ऐसे ही रिवाजका अभिनन्दन किया जाता है। जिससे समाज तथा देशका उत्थान हो। हानि कारक रिवाजोंको कुचलने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के लिए बनाए गए कानूनोंकी कमी नहीं है। सतीप्रथा एक रिवाज था किन्तु वह सरकार द्वारा कानूनन बन्द कर दिया गया। बाल विवाह और वृद्ध विवाह भी रिवाज थे किन्तु उनका निषेध करने वाला कानून मौजूद है। इसी प्रकार बाल दीक्षा व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र सभी दृष्टियोंसे कुप्रथा है। इसको बन्द करनेके लिए कानून बनाना समाज हितैषियों और राज्यका अवश्य कर्तव्य है।

(ख) धर्मशास्त्रोंकी आज्ञाके विषयमें पहले काफी लिखा जा चुका है। बीकानेरमें मुख्यतया तीन जातियाँ रहती हैं हिन्दू, मुस्लिम और जैन। तीनोंमेंसे किसीका भी धर्मशास्त्र बाल दीक्षाका अनुमोदन नहीं करता, प्रत्युत निषेध करता है। इस कानूनके बनने पर धर्मशास्त्रोंकी आज्ञाका खण्डन नहीं किन्तु पालन होगा।

(ग) अदालतोंमें ऐसी नजीरोंकी कमी नहीं है जहाँ दीक्षा लिए हुए व्यक्तियोंने दुराचार किया है। उसका कारण एक मात्र यही है कि ऐसे व्यक्तियोंको साधु बना लिया जाता है जिनकी वासनाएँ तृप्त नहीं हुई हैं।

(घ) वैज्ञानिक दृष्टिसे देखा जाय तो बालक साधु बननेके योग्य कभी नहीं माना जा सकता। इसके लिए एक तरफ बालकके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकासको रखा जाय और दूसरी तरफ उन बातोंको रखा जाय जो साधुमें होनी आवश्यक हैं तो पता चलेगा कि बालक किसी भी दृष्टिसे इतना विकसित नहीं होता जिससे साधुत्वका बोझ उठा सके।

(ङ) नीतिकी दृष्टिसे देखा जाय तो ऐसा कानून बनाना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि छोटे-छोटे बालकोंके साधु बननेसे साधु तथा गृहस्थ समाजके पतनकी पूर्ण सम्भावना है।

(च) उपरोक्त पाँचों बातोंके मिलनेसे इसे राजविधि (कानून) बनाना उचित ही है।

संरक्षक का उत्तरदायित्व

बालदीक्षाके समर्थक एक यह दलील देते हैं कि बालकका हित माता पिता अथवा किसी दूसरे संरक्षकके हाथमें सुरक्षित है। यदि दीक्षा लेनेमें बालकका अहित ही होता है तो संरक्षक स्वयं उसे रोक देगा। इसके लिए कानून बनानेकी आवश्यकता नहीं है।

(१) यह दलील ठीक नहीं है। बहुतसे माता पिता अपनी सन्तानके हितको समझते ही नहीं। उदाहरण स्वरूप बहुतसे माता पिता अपनी सन्तानका विवाह बाल्यावस्थामें कर देते हैं। वे यह नहीं समझते कि इससे बालक किस प्रकार निर्बल एवं सत्वहीन हो जाता है। इस विनाशकारी कुप्रथाको रोकनेके लिए समाजहितैषियों ने कानूनकी शरण ली और शारदा एक्टके रूपमें बालकोंका हित कानूनके अधीन कर दिया गया। इसी प्रकार बालककी योग्यताका ख्याल बिना किए अपने बच्चोंको दीक्षा दिलानेवाले मां बाप उनके हितको नहीं समझते। ऐसे बच्चोंके हितोंकी रक्षा कानून द्वारा ही हो सकती है।

(२) कई मा बाप ऐसे भी होते हैं जो धनके लोभमें पड़कर अपने बच्चोंको बेच देते हैं। वृद्ध-विवाह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कई जगह यहाँ तक देखा गया है कि एक पिताके कई लड़कियाँ हैं। अपने ऐश आरामके लिए उसे जब रुपयेकी जरूरत होती है, एक लड़की किसी बूढ़ेके हाथ बेच देता है। इसी प्रकार लड़कियोंको उसने आमदनीका जरिया बना रखा है। ऐसे पिता यदि साधुओं द्वारा कुछ लेकर अपने बालकोंको बेच दें तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

(३) कई वार ऐसा भी होता है कि एक पिताके कई लड़कियाँ हैं और सबका विवाह करना कठिन है तो वह उन्हें दीक्षा दिला देता है।

इस प्रकारके पिताके हाथमें बालकका भविष्य कभी सुरक्षित नहीं कहा जा सकता।

(४) जब माता पिता भी इस प्रकार बालकके हितोंका नाश करते हुए दिखाई देते हैं तो दूसरे संरक्षकोंका कहना ही क्या है! बड़ा भाई अपनी बहिनोंको रुपये लेकर या उनकी शादीसे तंग आकर दीक्षा दिलानेके लिए तैयार हो जाता है। छोटे भाईको भी रुपये लेकर या संपत्तिमें बँटवारेसे दूर करनेके लिए दीक्षा दिला देता है।

ऐसी दशामें बालक अपने हितकी स्वयं ही रक्षा कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि जब तक उसकी अवस्था परिपक्व न हो, उसे किसी बन्धनमें न डाला जाय। समझदार होनेपर वह अपनी इच्छानुसार कर सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(५) Guardians and Wards Act के अनुसार संरक्षकका कर्तव्य है कि वह बालकके भरणपोषण, स्वास्थ्य शिक्षा तथा विकाशका पूरा ध्यान रखे। यदि संरक्षक अपने इन कर्तव्योंका पालन नहीं करता तो उसे संरक्षकपनेसे हटाया जा सकता है। दीक्षा लेते समय बालक नीचे लिखे अनुसार अपने अधिकारोंसे वंचित हो जाता है।

(क) उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार नहीं रहता।

(ख) उसकी व्यावहारिक शिक्षाका अन्त हो जाता है।

(ग) वह कमाकर खाने योग्य नहीं रहता।

(घ) यदि वह साधुका वेष छोड़ दे तो समाजमें घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है।

(ङ) अपनी जातिमें उसका विवाह नहीं हो सकता।

इस प्रकार वह बालक अपने भविष्यको बिगाड़ लेता है। किसी भी संरक्षकको, चाहे वह माता पिता हों या कोई दूसरा, बालकका भविष्य बिगाड़नेका अधिकार नहीं है। वह उसके कल्याणके लिये होता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उपसंहार

दीक्षा कोई खेल नहीं है। इस मार्गपर जाने वाले मुसाफिरको क्रमसे अपना अभ्यास बढ़ाना चाहिए तथा चरित्रको उन्नत करते जाना चाहिए। केवल (कपड़े पहिन लेने) वेष बदल लेने मात्रसे कोई साधु नहीं बन जाता। जिसे संसारके स्वरूपका पता हो, जिसे संसारसे विरक्ति हो गई हो तथा जिसमें मुक्ति प्राप्त करनेकी आन्तरिक अभिलाषा हो वहीं दीक्षाके योग्य होता है। साधुत्वकी योग्यता के लिए जैनधर्ममें सम्यक्त्व, श्रावक व्रत तथा पडिमाधारणके रूपमें क्रमिक श्रेणियां सुन्दर रूपसे रखी गई हैं। पडिमाओंके बाद साधु जीवनकी योग्यता अपने आप आ जाती हैं। पडिमाएं ग्यारह हैं और उनकी आराधनामें साड़े पाँच वर्ष लगते हैं। इनमें धर्म अधर्म का ज्ञान, तपश्चर्या, शान्तवृत्ति, ब्रह्मचर्य, साधु जीवन, अपने लिए बनी हुई वस्तुका त्याग वगैरह सारा अभ्यास क्रमसे आ जाता है। पहली प्रतिमाका अभ्यास काल एक महीना है। दूसरीका दो महीने, तीसरीका तीन महीने, इसी प्रकार बढ़ता जाता है। पहली प्रतिमामें धारण किए गए व्रत आगे आगेकी प्रतिमाओंमें चलते रहते हैं।

हिन्दू धर्म शास्त्रके अनुसार पाँचसे आठवर्षके बीचमें उपनयन संस्कार होता है। उसके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए विद्याध्ययन करना होता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कानूनमें अठारह वर्षसे नीचेका बालक किसी प्रकारका ठेका लेना, सौदा करना, करार करना, आदिके लिए अयोग्य माना जाता है। दीक्षा तो सारे जीवनका सौदा है ! उसके लिए बालकको योग्य नहीं माना जा सकता।

किसी बालकको साधु बना लेनेका अर्थ है, उसे सांसारिक दृष्टि से मृत समझ लेना। ऐसा बालक अपने सभी अधिकारोंको खो देता है। इस लिये यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है।

धर्म या समाजमें फैली हुई कुप्रथाका सुधार यदि उसी समाज वाले कर लेवें तो राज्यको दखल देनेकी आवश्यकता नहीं है, वस्तु-स्थिति ऐसी है कि समाज वाले साधुओंके हाथमें इस प्रकार बिके हुए हैं कि वे इस कुप्रथाको रोकनेके लिए अभी तैयार नहीं होते और न उनमें ऐसी शक्ति है कि वे इसे रोक सकें। ऐसी दशामें बालकोंकी हितरक्षा तथा बुराइयोंको दूर करनेके लिए बाध्य होकर कानून बनाना पड़ता है।

यह बात ठीक है कि पहले पहल यह कानून पुराने विचार वालों को बुरा लगेगा। वे इसका विरोध भी करेंगे। नई बात कितनी ही अच्छी क्यों न हो, वह पहले पहल पसन्द नहीं आती। यह तो स्वाभाविक मनोवृत्ति है। किन्तु धीरे धीरे वे सभी इस कानूनके लाभ का अनुभव करने लगेंगे और फिर वे भी इसकी प्रशंसा करेंगे। इस लिये वर्तमान विरोधकी तरफ ध्यान न देना चाहिए। सती प्रथा प्रतिबन्धक कानून और शारदा एक्टके समय भी पहले पहल

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कड़ा विरोध हुआ था किन्तु अब एक भी ऐसा दल नहीं है जो इन्हें हितकर न मानता हो।

आजसे लगभग २३ सौ वर्ष पहले अर्थात् ईसासे पूर्व चौथी सदी में भी अयोग्य दीक्षाओंका प्रचार होने लगा था। उस समयके राजनीतिके आचार्य कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें लिखा है कि दीक्षाके विषयमें कोई अनुचित बात हो तो राजाका कर्तव्य है कि उसे दण्ड द्वारा रोक दे।

इस प्रकार धर्मकी आड़में होनेवाले अनुचित कार्योंमें राजशासन द्वारा हस्तक्षेपका होना कोई नई बात नहीं है।

इसलिये यह आवश्यक जान पड़ता है कि सरकार द्वारा ऐसा कानून बनना चाहिये जिससे कोई भी अपरिपक्व बुद्धि वाला बालक साधु न बन सके।

इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये नीचे लिखा बिल बीकानेर राज्यकी व्यवस्थापिका सभाके आगामी अधिवेशनमें उपस्थित किया जाएगा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बाल दीक्षा प्रतिबन्धक बिल

बीकानेर राज्यमें नाबालिग बच्चोंको साधु, साध्वी, यति, यतनी, सन्यासी आदि बनानेके लिये दी जाने वाली दीक्षाको रोकने के लिये बिल—

क्योंकि नाबालिग बच्चोंको साधु, साध्वी, यति, यतनी, सन्यासी आदि बनानेकी प्रथाको रोकने के लिये तथा नियमोल्लंघन करने वालोंको दण्ड देनेके लिये विधानका होना आवश्यक है, इस लिये नीचे लिखा कानून बनाया जाता है—

(१) संक्षिप्त और परिधि—

(क) इस बिलका नाम 'बीकानेर राज्य बाल दीक्षा प्रतिबन्धक बिल' होगा।

(ख) यह सारे बीकानेर राज्यमें लागू होगा।

(२) आरम्भ—यह बिल उसी दिनसे लागू हो जायगा जिस दिन श्री जी साहब बहादुरकी स्वीकृति हो जायगी।

(३) परिभाषाएँ—पूर्वापर सन्दर्भमें किसी प्रकारका विरोध न हो तो—

(क) नाबालिग बच्चे वे समझे जाएँगे जिनकी आयु १८ वर्षसे कम है।

(ख) साधु, साध्वी, यति, यतनी, सन्यासी आदि से तात्पर्य उनसे है जिन्हें धार्मिक दृष्टिसे आदरणीय माना जाता है तथा जो सांसारिक बन्धोंको छोड़कर तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं।

(४) दण्ड—जो कोई भी किसी नाबालिग लड़के या लड़कीको दीक्षित करेगा, दीक्षामें सहायता देगा या उसके लिये ऐसा प्रयत्न करेगा, जिससे नाबालिगको साधु, साध्वी, यति, यतनी, सन्यासी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि बनाया जाता हो उसे एक वर्ष तक कैद तथा जुर्मानेकी सज़ा दी जायगी।

खुलासा—इस धाराके अनुसार वे लड़के या लड़कियाँ नाबालिग समझे जायँगे जिन्हें न्यायालय १८ वर्षसे नीचे होनेका निर्णय दे दे, वशर्ते कि इससे विपरीत सिद्ध न हो।

(५) यदि कोई नबालिग लड़का अथवा लड़की साधु साध्वीके रूपमें दीक्षित कर लिया गया तो दीक्षा देने वाले सम्प्रदायके धर्मशास्त्रोंमें कुछ भी लिखा हो, उसकी दीक्षा अनियमित और गलत समझी जायगी और वह लड़का या लड़की ऐसा ही माना जायगा जैसा वह बिना दीक्षाके माना जाता।

(६) न्याय—इस बिलके अन्तर्गत होने वाले अपराधोंकी जाँच फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट करेगा। यह अपराध पुलिसके हस्तक्षेप योग्य समझा जायगा तथा इसके लिये जमानत ली जा सकेगी।

उद्देश्य और हेतु

सभी लोग इस बातको एक मतसे स्वीकार करेंगे कि नाबालिगों में ऐसा परिपक्व ज्ञान और निर्णय शक्ति नहीं होती जिससे वे उस दीक्षाके अर्थको अच्छी तरह समझ सकें जो कभी कभी हम लोगोंमें होती हैं। मुनि जीवन बड़ा कठोर होता है और एक नाबालिग लड़के या लड़कीसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उस कम उम्रमें ऐसा कठोर निश्चय कर सके। इस बिलका ध्येय किसी समाज विशेषकी धार्मिक भावनाओंमें हस्तक्षेप करना नहीं है और न ही ऐसी दीक्षाओंकी पवित्रताको कम करना है, किन्तु नाबालिग बच्चों के हितकी रक्षा करना ही इस बिलका ध्येय है। इस प्रकारकी दीक्षाओंका प्रत्यक्ष परिणाम यही होता है कि अधिकतर मामलोंमें दीक्षित स्वयं और उसे दीक्षा देने वाली संस्था दोनों बदनाम होते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सम्मतियाँ

BHARATIYA VIDYA BHAVAN

33-35. HARVEY ROAD,
(Near Chowpatty)
BOMBAY 7

ता० १३-२-४४

बीकानेर राज्य में बालदीक्षा प्रतिबन्धक कानून के जारी करने के लिये श्रीयुत चम्पालालजी बाँठिया ने जो बिल तैयार किया है उसके लिये हमारी सम्पूर्ण सम्मति है। बड़ौदा जैसे प्रगतिशील राज्यने तो बहुत वर्षों पहले ऐसा कानून बनाकर अपने राज्य में होने वाली ऐसी अनुचित बालदीक्षा का प्रतिबन्ध करने का बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया है। बीकानेर राज्य भी एक प्रगतिशील राज्य गिना जाता है। उस राज्य में अबोध बालक बालिकाओं को मूण्ड कर उनके जीवन को अस्त-व्यस्त बनाने का निन्दनीय प्रचार जैन और हिन्दू फिरकों के कई साधु सन्यासियों के द्वारा बहुत बड़ी तादाद में होता रहता है—इसलिए इस राज्यमें ऐसे कानून के होने की बहुत आवश्यकता है। पुराने धर्मशास्त्रों में इस विषय में चाहे जैसे कुछ विधान उपलब्ध होते हों पर वर्तमान काल की जो सामाजिक और राष्ट्रीय परिस्थिति है उसके ख्याल की दृष्टि से ऐसे नाबालिग बालक बालिकाओं को चाहे जिस तरह भरमा कर उन्हें अपने चेला चेली बनाने की जो प्रवृत्ति हो रही है वह बहुत ही निन्दनीय और हानि कारक है। अबोध बालक-बालिकाओंके जीवन और चरित्र-गठन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की समस्या बहुत जटिल और नाजुक है। जिन धर्मान्ध और शिष्य-लोभी धर्मगुरुओं को समाज और राष्ट्र के प्रति अपना क्या कर्तव्य है इसका यत्किञ्चित भी ख्याल नहीं है और जो जगत् की वर्तमान कालीन देशकालात्मक परिस्थितिसे सर्वथा अज्ञात है; उनके हाथोंमें ऐसे अबोध बालक बालिकाओं का जीवनका पड़ जाना बहुत ही खतरनाक है। वे अज्ञान बालक बालिकाएं जिन्हें अपने हिताहित की कुछ भी कल्पना नहीं होती ऐसे शिष्यमूढ़ गुरु-गुरुणियों के पल्ले पड़ कर प्रायः अपना जीवन नष्ट भ्रष्ट ही करते रहते हैं। यह विषय बहुत ही नाजुक है—और हमें अपने निजके जीवनके दीर्घकालीन अनुभवसे ज्ञात है कि ऐसे बालक-बालिकाओंकी दीक्षाका कितना विपरिणाम होता है। धर्म और समाज दोनोंके हितकी दृष्टिसे ऐसी बाल-दीक्षाओंका प्रतिबन्ध होना बहुत ही आवश्यक है और जो धर्मान्ध लोग इस विषयमें विरुद्ध वर्तन करें, करावें उन्हें योग्य शिक्षा देना प्रत्येक प्रजाहित चाहने वाले राज्यका परम कर्तव्य है।

डाइरेक्टर—भारतीय विद्या भवन,
प्रधान—प्राकृत और हिन्दी वाङ्मय
विभाग; एवं सिंघी जैनशास्त्र शिक्षा पीठ,
सम्पादक—सिंघी जैन ग्रन्थमाला।

(आचार्य) जिनविजय मुनि
अध्यक्ष
राजस्थान हिन्दी-साहित्य सम्मेलन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

BHARATIYA VIDYA BHAVAN.

33-35. HARVEY ROAD,

BOMBAY 7.

इस देशके प्रत्येक सम्प्रदाय में बालदीक्षा की प्रथा चिरकाल से चली आ रही है पर साथ ही उसमें अनेक दोष तथा खराबियाँ बढ़ती गई हैं जो कि इतिहास द्वारा सिद्ध हैं। ये खराबियाँ अब इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि इस शिक्षा और स्वतन्त्रता प्रधान युग में उनकी उपेक्षा करना मानों धर्म नाश का आह्वान करना है। किसी युगमें बालदीक्षा को धार्मिक रूप चाहे कितना ही क्यों न दिया गया हो पर पुराने अनुभवोंने यह प्रमाणित कर दिया है कि धर्मके नियमों का बिना परिवर्तन किये धर्म खुद भी नष्ट होता है। इसलिये धर्म रक्षा के निमित्त ही बालदीक्षा के धार्मिक स्वरूप में परिवर्तन होना आवश्यक है। नाबालिग लड़के लड़कियों को दीक्षित करने से जो खराबियां पैदा होती हैं वे संक्षेप में ये हैं :—

(१) दीक्षित बालक या बालिका बड़ी अवस्था होने पर जब अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रख सकता तब वह छिप कर अनाचार गामी होता है जिससे वह केवल अपना ही नहीं बल्कि अनेकों का जीवन बर्बाद करता है। फलतः उसे पहले उसका गुरु और उसका सम्प्रदाय ही तिरस्कृत करता है और फिर वह यदि समाज में रहने की कामना करे तो भी प्रतिष्ठापूर्वक रह नहीं सकता। इस तरह वह समाज और धर्म सम्प्रदाय दोनों से भ्रष्ट होता है। यह हुई व्यक्तिगत हानि।

(२) बालदीक्षा के दोषों के कारण अनेक गृहस्थ स्त्री पुरुषों का जीवन भी मलिन होता है और समाज में एक तरह से छोटा मोटा अनाचार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का अड्डा सर्वत्र जम जाता है। धर्मस्थान और तीर्थस्थानों की पवित्रता तो रहती ही नहीं। ऐसे दूषित व्यक्ति धर्मके नाम पर घुमक्कड़ होते हैं और दूसरों के कन्धे पर जीते हैं। इसलिये समाज के ऊपर निरर्थक बोझा भी बढ़ता है। यह हुई समाजिक [illegible]

बालदीक्षा का मुख्य उद्देश्य था काम वासना से मुक्ति पाकर आत्म शुद्धि पूर्वक लोकसेवा करना, पर जब कि बालदीक्षा की प्रतिष्ठा बढ़ी और उसमें जीवन-यापन करना सरल हुआ तब सामाजिक और आध्यात्मिक जबाबदेही से सर्वथा शून्य ऐसे लोगोंको धर्म मार्गमें भरती होने लगी। फलतः अपनी आजीविका और प्रतिष्ठा के लिये वे नाना बहमों की पुष्टि के द्वारा निभने लगे जिससे मानवता और सामाजिकता के उत्थान में बड़ा भारी अन्तराय पड़ता है। और हजार प्रयत्न करनेपर भी शिक्षा का अपेक्षित फल नहीं आता।

उक्त कारणोंसे मैं इस निश्चित परिणाम पर पहुंचा हूं कि जब धर्मगुरु और समाजके अगुए स्वयं बालदीक्षा का आत्यन्तिक नियमन नहीं करते तब यह काम सुराज्य के तन्त्रको ही अपने हाथ में लेना चाहिये। धर्मके विकार दूर करना यह भी राजधर्म है। इसलिये बीकानेर जैसे प्रगति शील राज्य के लिये बड़ौदा राज्य की तरह उचित है कि वह श्रीयुत चम्पालालजी बाँठिया के प्रस्तुत बिल को कानून का रूप अवश्य दे और इस तरह धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के लिए दूसरे राज्यों के वास्ते एक विचारपूत उदाहरण पेश करे।

१३ फर्वरी १९४४.

पं० सुखलालजी.
भूतपूर्व जैनदर्शनाध्यापक
हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

CHIMANLAL C. SHAH J. P.
M. A., LL. B.
Solicitor.

Tele : No. 23938
35, Dalal Street,
FORT, BOMBAY.

१५ मी फेब्रुअरी, १९४४

शेठ चंपालाल जी बांठियाअे बीकानेर राज्य नी धारा सभा मां बालदीक्षा प्रतिबन्धक खरड़ो रजु कर्यो छे ते हुं बांची गयो छुं, ते साथे हुं संपूर्ण सहमत छुं. आवा धारा नी आवश्यकता विषे बे मत होई सके नहीं, स्थिति चुस्त लोको अज्ञान के स्वार्थे थी तेनो विरोध करशे पण प्रजा नो बहु मोटो भाग तेने सहर्षे आवकारशे ते विषे शंका नथी। आवो खरड़ो लाववो पड़े ते अशोभनीय छे, ते आपणा समाज नी अवनति सूचवे छे, खरी रीते प्रजा मत एटलो जाग्रत होवो जोइये के बालदीक्षा अशक्य थाय, पण धर्मने नामे बहेमो ए आपणा मां घर कर्युं छे अने आवा अनिष्टो आंखे जोता छतां तेने अटकाववानी हींमत नथी, तेवा संजोगो मां आवो कायदो अनिवार्य छे, कोई पण प्रगतिशील राज्य तेने आवकारता प्रत्याघाती मानस वाला कोई बर्ग ना विरोधनी परवा नहिं करे।

बालदीक्षा धर्म समाज-हिते के मानस शास्त्र नी दृष्टि ए अनिष्ट छे, मानस शास्त्र नी दृष्टि बराबर लक्ष मां राखी हिन्दू धर्मे संन्यासाश्रम ने अंतिम आश्रम स्वीकार्यो छे, सांसारिक अनुभवों थई गया पछी इन्द्रिय सुखो उपभोग नी लालसा जे नी क्षीण थई छे, समाज प्रत्ये नी पोता-नी फरजो अदा करी ईश्वर नुं सान्निध्य जे ने अनुभववुं छे, जेने साचो अन्तर वैराग्य जाग्रत थयो छे एवाओ संन्यास लई सके, बाल्यवय मां दीक्षा लेनार बालक बालिका ने आ अनुभवो होता नथी एवणे अणसमजण मां हा पाड़े छे, पण ज्यारे यौबन आक्रमण करे छे, विषय सुखोपभोग नी तीव्र आकांक्षा जागे छे, ज्ञान के वैराग्य नुं बल नथी होतुं त्यारे तेनुं पतन थाय छे, एटलुंज

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नहीं पण ते साथे बीजानुं पण पतन
थाय छे लोको मां थी धर्म भावना
आवे एवं छे के बाल दीक्षा अपाय
किस्साओं मां कहेवाता साधुओ अने ते
छल कपट नो आश्रय पण लेवाय छे, अने
अने लालचो आपी कुमली वयना संतानो
अने समाज नुं आ महान कलंक छे, तेने अटकाववु धर्म छे, तेने
निभाववा मां अधर्म छे, बीकानेर राज्य बड़ोदरा राज्य पेठे आवा
खरड़ा ने आवकारशे अने तेनी बराबर अमल करशे एवी हुं आशा
राखुं छुं ।

चीमनलाल चकुभाई शाह

(भूतपूर्व सालिसिटर—गवर्नमेन्ट आफ बम्बई) १५-२-४४

श्रीयुत चम्पालालजी बाँठिया, भीनासर के 'बाल-दीक्षा-प्रतिबन्धक बिलका बंगाल प्रान्तीय हिन्दू महासभा जबर्दस्त समर्थन करती है। यह प्रथा समाज के लिये बहुत हानिकारक है। आशा है, श्रीमान् बीकानेर नरेश इस बिलको पास करेंगे।

ता० २२-१०-४३ ई०
(तार द्वारा)

(माननीय) श्यामाप्रसाद मुकर्जी
सभापति—बं० प्रां० हिन्दू महासभा।

अखिल भारतीय महिला कान्फ्रेंस, छोटी उम्रके बालक और बालिकाओंको साधु एवं साध्वी के रूपमें दीक्षित करनेकी प्रथाका विरोध करती है और श्रीयुत चम्पालालजी बांठियाके प्रस्तावित बिल का पूर्ण समर्थन करती है।

ता० २४-१०-४३ ई०
(तार द्वारा)

(श्रीमती) विजय लक्ष्मी पंडित
सभानेत्री—अखिल भारतीय महिला कान्फ्रेंस।
भूतपूर्व स्थानिक स्वराज्य मंत्रिणी—यू. पी. गवर्नमेंट

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com